मिट्टी का कलंक

[आंचलिक उपन्यास]

लेखक

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

प्रकाशक

गाडोदिया पुस्तक भण्डार

बीकानेर (राज०)

परम आदरणीय

स्व. बाबा श्री मूलचन्दजी बिस्सा

स्व. पिता श्री चुन्नीलालजी बिस्सा

को सश्रद्धा भेंट,

जिन्होंने मेरे साहित्यिक

जीवन निर्माण में सम्पूर्ण

सहयोग दिया ।

—'चन्द्र'

भूमिका

श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' जी का उपन्यास 'मिट्टी का कलंक' मैं पढ़ गया। इस उपन्यास में जिस वातावरण को और जिस विषय को लेखक ने चित्रित किया है, वह है राजस्थान की जन-जागृति के साथ-साथ ह्रासोन्मुखी सामन्ती व्यवस्था का टूटता हुआ ढांचा। जमींदारों और ठाकुरों के किसानों पर अत्याचार और नारी के प्रति एक भोग्य वस्तु का-सा अमानवीय सम्बन्ध इस उपन्यास के दो मुख्य मूलाधार है। जहाँ तक रियासतों मे राजनैतिक जागृति का प्रश्न है, उसमे जो न्यस्त स्वार्थ काम कर रहे थे उन सबका पूरा पर्दाफाश लेखक ने किया है। साऊ (हू) कार और राजपूती-चाल के अभिमानी बीकानेर नरेशों के आतूफा-मातूफा आदि का अच्छा चित्रण है। उपन्यास की कथावस्तु 1946 से पूर्व की है, फिर भी (पृष्ठ 122 पर) लेखक ने मास्टर जी के मुँह से जो कहलावाया है वह आज भी सच साबित हो रहा है।

"ये जागीरदार हर तरह से किसानों के शोषण के तरीके अपनाते है जिससे उनका अधिक विकास न हो। ये अपनी शक्ति से उनके संगठन व आन्दोलन को कुचलने की भरसक चेष्टा करते हैं ताकि वे एकता की अजेय शक्ति में एकजुट न हो। जब वे इन दो चेष्टाओ मे विफल हो जाते हैं तो वे खेतिहारो के सगठन को छिन्न-भिन्न करने में अपनी बुद्धि दौड़ाते है। यह बुद्धि इसमें फूट के बीज बोने का प्रयास करती है। पर वर्तमान खेतिहारो के लिये शुभ भले ही न हो पर आने वाला कल निश्चित रूप से इन्ही खेतिहारों का है। जिस प्रकार आज हम सत्याग्रह व आन्दोलन करते हैं, उसी प्रकार उन समय ये जागीरदार अपने सड़े-गले तत्वों को पुनर्जीवित करने के लिए इन्ही रास्तों को अपनायेंगे। उस सड़ी लाश को जिन्हें दरअसल दफना ही देना चाहिये, लेकर घूमेंगे? अपनी शक्तियों को विनाश की ओर न लगाकर नाश की ओर प्रेरित करेंगे। मतलब यह है कि इनका भविष्य अन्धकारमय है।

इस राजनैतिक चित्र में लेखक ने सच्चे राजनैतिक मुकदमे के कागजों का, डाक्युमेंटों का उपयोग किया है (पृष्ठ 79)। उससे यथार्थता और बढ़ी है। स्टेट्स पीपल कांग्रेस की जो राह-चलते हुए झाँकी दी गई, वह भी वास्तविकतापूर्ण है। मैं खुद रियासत में जन्मा, बचपन के शिक्षा और अध्ययन के प्रायः तीस वर्ष मैंने मध्यभारत की रियासती घिस-घिस और किच-किच में बिताये हैं। और मध्यभारत की हालत राजस्थान से भिन्न नहीं थी। इसलिये मुझे वह सब बहुत निकटता से मालूम है। लेखक ने उस आन्दोलन की केवल असली तसवीर ही पेश की है। इस प्रकार 'मानो श्रोम' में यानी काले और सफेद में व्यक्ति या संस्था का चित्रण, अब कुछ पुराना और कम स्वाभाविक जान पड़ता है। परन्तु शायद लेखक ने सामंतवाद के कृष्ण-पक्ष को और नग्न रूप में दरसाने के लिये यह ऐसा किया है। उद्देश्य शुभ है, परन्तु जैसा कि 46 के बाद की राजनैतिक घटनाओं ने सिद्ध किया है, उसी समय के सामंत-विरोधी तत्व बाद में सामंतवाद से समझौता कर बैठे और जनता की आकांक्षाओं के साथ उन्होंने गद्दारी की। यह इतिहास भी भुलाने की बात नहीं। आज के विलीनीकृत रियासती इलाके में जो कुर्सियों के लिये छीना-झपटी, जो आपा-धापी और नेताई की होड़-सी नजर आती है; उसके बीज उस समय भी मौजूद थे। तसवीर पूरी होने के लिये जरा-सी उसकी झलक भी जरूरी थी।

इस बात का प्रमाण मास्टर जी या झीटिया जैसे चरित्रों के निर्माण में जो भावुक तत्व घुला-मिला है, उससे मिलता है। मैंने कुछ वर्ष पूर्व लक्ष्मीनारायण लाल के प्रथम उपन्यास "धरती की आँखें" की भूमिका में यह बात लिखी थी और आज भी लिखना चाहता हूँ कि जमींदारी या सामंतवाद या पूँजीवाद शोषण या संप्रदायवाद जैसे समाज-शरीर में लगे रोगों को दूर करते समय भावुक दृष्टिकोण से काम नहीं चल सकता। मुझे लगता है कि प्रस्तुत उपन्यास में जो भावुक प्रसंग हैं, वे काफी काव्यात्मक ढंग से चित्रित हैं। यथार्थवादी

चित्रण में अधिक तटस्थता की अपेक्षा होती है। कृष्णचन्द्रजी और तटस्थता को पूरी तरह नहीं अपनाते।

जहाँ तक उपन्यास के शिल्प का प्रश्न है, लेखक ने आजकल आंचलिक उपन्यास लिखे जा रहे हैं, जैसे नागार्जुन का 'बलचनमा' रेणु का 'मैला आंचल' या शिवप्रसाद मिश्र का 'बहती गंगा' आदि उन्हीं के अनुसार लोकगीतों और लोक-कथाओं का, देहाती मसलों और मुहावरों का खूब अच्छा उपयोग किया है। लेखक की उस अंचल के विषय मे जानकारी घनी और सीधी अपनी है। यानी यह केवल पुस्तकों की मारफत या 'सेकेंड हैंड' अनुभूति नहीं है। उसी मात्रा मे वह रंग भी लाई है। राजस्थान के कई चित्र सामने उभरकर आ जाते है। विशेषतः तीज त्योहारों के, गणगौर के, पुरानी लड़ाइयों के, स्त्री के कष्टमय जीवन के, वीरों की निर्भयता के, त्याग के, बलिदान के। भाषा मे भी स्थानिक रंग लाने की लेखक ने खूब कोशिश की है, और मेरा विश्वास है कि हिन्दी का जो भावी रूप बनेगा उसमें चोमासा (चौमासा), आवड़ेगा, रीस, भायली, वेगी-वेगी, हिवड़े, सोवणी, कूड़, गोली, बांकड़ली, मुलक, घूंटो, टीलों, पावणा, अणखावणा, मिनख, टावरों, डाकण, जमारा, मोसा, म्रोडो, लारे, जट्ट, मोट्यार, अमूज, लाग इत्यादि का बहुत ज्यादा हाथ रहेगा।

रियासतों की बुराइयों पर कन्हैयालाल गौबा की 'एच-एच' जैसे ही नाम की डा० मुल्कराज आनन्द की नयी अंग्रेजी किताब (हिन्दी में) 'एक था राजा' राहुलजी की 'मधुपुरी' आदि कई किताबें निकली हैं, जो उपन्यास के रूप में उसी ह्रासोन्मुखता की झाँकी देती है। प्रस्तुत पुस्तक भी उसी विषय की है। और मैं आशा करता हूँ कि इसका स्वागत होगा।

प्रभाकर माचवे
सुप्रसिद्ध साहित्यकार

मैं इतना ही कहूँगा ......

यह मेरा मौलिक उपन्यास है।

इस उपन्यास का सर्वत्र घटना–स्थल बीकानेर के इर्द–गिर्द का है और लेखक ने सत्य घटनाओं के साथ-साथ सम्भावित बातों का भी सम्बल लिया है। उपन्यास के पात्र, वातावरण और घटनाएं राजस्थानी जीवन की है अतः इसको पढ़ते समय इन सभी बातों का ध्यान आवश्यक है कि यह एक राजस्थानी परिवेश का उपन्यास है।

इस उपन्यास को लिखने मे मुझे "श्री सत्यदेव विद्यालंकार द्वारा सम्पादित बीकानेर राज्य का राजनीतिक विकास और श्री मघाराम वैद्य" नामक पुस्तक मे काफी सहायता मिली है। अतः मैं उनका आभारी हूं और कृतज्ञ हूँ। प्रजा परिषद के उन कार्यकर्त्ताओं का जिन्होंने रियासत के जन–जागरण में हिस्सा लिया।

मैं व्यक्तिगत रूप से प्रख्यात साहित्यकार श्री प्रभाकर माचवे का भी आभारी हूँ जिन्होंने इसकी भूमिका लिखी। यह उपन्यास पाठकों को इतिहास के प्रच्छन्न पृष्ठों की जानकारी देगा, ऐसा विश्वास है।

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'
आशा-लक्ष्मी, नया शहर, बीका

रियासत पर पण्डित जवाहर लाल नेहरू

"जहां विवाह के निमन्त्रण-पत्र राज्य से सेंसर कराने पड़ते है, जहां पर्दे की ओट में जनता पर भीषण अत्याचार किये जाते हों और उनके प्रतिवाद में मनगढ़न्त दलीलें दी जाती हों, उस राज्य का शासक इन्सान नहीं, हैवान है। आखिर ये जुल्म ज्यादती कब तक चलायेंगे?"

ये उद्गार केवल बीकानेर के दमन-चक्र से ही सम्बन्धित नहीं हैं, अपितु राजस्थान की समस्त रियासतों की जनता उस समय ऐसे ही दमन-चक्र से त्रस्त थी।

: १ :

"झीटिया ...."

खेतों की बालो को चूमती हुई यह संगीत-सी प्रिय और शहद-सी मीठी आवाज ध्वनित-प्रतिध्वनित हो उठी ।

"अरे ओ झीटिया ! कहाँ मर गया, बोल तो सही ।"

लहलहाते खेतों की झूमती जवान बालें पवन का स्पर्श पा हँस उठी । उसकी भीनी-भीनी सुगन्ध 'ढोलकी' के मन मे बस गई । उसकी प्रतीक्षा मे बेचैन आँखें पल भर के लिए बन्द हो गई जैसे वह दिवा स्वप्न देख रही हो । जैसे उसका मन-पक्षी इन खेतों की विस्तृत हरीतिमा पर जी भर कर कुलांचे भरना चाहता हो । वह कुछ क्षण तक मन्त्रमुग्ध-सी, निर्जीव-सी खडी रही कि किसी ने चुपके से उसकी दोनों आखों को अपने दोनों हाथों से बन्द कर लिया ।

वह चौंक उठी । किसी के स्पर्श से नारी-तन में जो सहज सिहरन दौड़ती है, वह उसके शरीर में दौड़ गई । वह हठात् बोल पडी-"कुण (कौन) है ?"

"जरा जानो।" कहने वाले की आवाज बहुत ही बनावटी थी। ढोलकी ने अपने कोमल हाथों को उन दो हाथों पर फेरा और फिर बिगड़ कर बोली—"मेरी आँखों पर से हाथ हटा ले वरना ठीक नहीं रहेगा ।"

"क्या ठीक नहीं रहेगा ?"

"सगला झींटा (रुखे सूखे बाल) खोसकर हाथ में दे दूंगी।"

"अच्छा, इत्ती रोस (क्रोध) ?"

"तू छोड़ेगा या···· ।"

"मैं तो छोड़ने को तैयार हूँ, पर जरा पहचान कर बता दे।"

"राम का मारा, तू ऐसे थोड़े ही मानेगा, तुझे अभी मजा चखाती हूँ।" ढोलकी ने जोर लगाकर अपने हाथों से उसके हाथ पकड़े । फिर शरीर को ढीला कर जमीन पर गिरकर मुक्त हो गई और पलट कर देखा । ठसके के साथ लम्बे स्वर में बोली—"तो आप है, उमराव जादे (रईस के बेटे) ।" मैं तो पहले ही जान गयी थी ।

"जी, हाँ !" अकड़कर भीटिये ने हुंकारा ।

'जी, हाँ !" मुँह बिचका कर ढोलकी ने गुस्से से कहा पर उसके होठों पर अनायास ही हँसी थिरक उठी । वह हँसी मानो भीटिये के लिए वरदान सिद्ध हुई । लपक कर वह उसके समीप जा बैठा ।

ढोलकी अपना आँचल सम्भालती हुई उससे दूर जा बैठी और मुँह दूसरी ओर घुमाती हुई बोली—"यदि तू इस तरह तंग करेगा तो मैं यहाँ कभी नहीं आऊँगी।"

"तू नहीं आयेगी तो मैं आ जाऊंगा।" भीटिए ने इतना कह मुट्ठी में मिट्टी भर ली और उसे सूंघने लगा ।

"क्यों ?" ढोलकी की आँखें औसत आकार से फैलकर भीटिये के चेहरे पर जम गई ।

भीटिया कुछ रुककर बोला "देख, ढोलकी ! यदि तू ही मुझसे नाराज हो गई तो·······।" भीटिया गम्भीर हो गया । उसकी दृष्टि मिट्टी पर जमी हुई थी ।

"तो·······?" ढोलकी की आँखों में प्रश्न बोल उठा ।

"तो मैं गाव छोड़कर कहीं चला जाऊँगा।" मैं तो बिना मां-बाप का हूँ।"

"गोव !...... नहीं भौंटिया, ऐसा मत करना, मुझे तेरे बिना एक पल नहीं प्रावड़ेगा (मन नहीं लगेगा) ।"

'मैं तेरा कौन हूँ ?"

"तू ......!" ढोलकी आज भी सदैव की भांति चुप हो गई।

वह इस प्रश्न का कभी भी उत्तर नहीं दे सकती थी। वास्तव में वह इस प्रश्न का क्या उत्तर दे, जानती ही नहीं थी पर आज बोल उठी।

"यह तो भगवान जानता है।" वह भोलेपन से कह उठी।

"हाँ, भगवान ही जानता है कि तेरे मेरे बीच कौनसा रिश्ता है।"

"भौंटिया हो, भौंटिया !" नजदीक के खेत से राजाराम की आवाज सुनाई पड़ी।

स्वप्न से जैसे जागी हो उसी तरह ढोलकी उतावली से बोली—"ले, जल्दी से रोटी खा ले साँझ हो गई है। राजाराम भौंटिया को बुला रहा है। तेरे पास आने से कितना मोड़ा (देर) हो जाता है ?" इतना कह वह एक चिकने कपड़े में बंधी रोटियों को खोलने लगी।

भौंटिया उदास स्वर में बोला—'ढोलकी ! मेरा है भी कौन तेरे सिवा ? न आगे है और न पीछे और एक दिन तू भी मुझे छोड़कर चली जायगी।

"कहाँ ?" ढोलकी ने रोटी उसके सामने रख दी।

"सासरे।"

"धत् । वेगी-वेगी (जल्दी-जल्दी) रोटी खा, देख अँधियारा हो रहा है, तेरी बातों में वक्त का पता ही नहीं चलता।" वह कृत्रिम रोष से जल्दी-जल्दी बोली।

भौंटिया गम्भीर स्वर में बोला—'जब तू सासरे चली जायगी तब मुझे इस तरह कौन खिलाएगा ?"

"अपनी जबान को ताला लगा ले। यदि बोलना नहीं आता है तो मत बोला कर। कह दिया कि मैं तुझे छोड़कर कहीं भी नहीं जाऊँगी। तू सबको भोत ही चोखा लगता है और काका तो तुझे खूब चाहता है।"

"सच ?"

"हाँ।" उसने उसके रुखे-सूखे बालों में अपनी अँगुलियाँ उलझा दीं।" भगवान हमारा भला जरूर करेगा।

खेतों की बालें हवा के झोंके से हिल उठीं।

ढोलकी हठात् उठती हुई बोली—"मैं चली भीटिया, तड़के आऊँगी।"

"कल राब बनाकर लाना।"

"ठीक है।" और देखते-देखते ढोलकी उसकी आँखों से ओझल हो गई।

भीटिया धीरे-धीरे कौर हलक से पानी के सहारे उतारने लगा वह विचारों में खो गया।

तभी खेत में खड़खड़ाहट की आवाज सुनाई पड़ी। भीटिया चौंक कर इस तरह खड़ा हो गया जैसे कोई जंगली जानवर आ गया हो और उस पर झपटना चाहता हो। उसने अपना पैंतरा बदला कि पीछे से जोर की हसी सुनाई पड़ी।

भीटिया गर्जा—"कौन है?"

"मिनखा" (आदमी)

"गैलो (पागल)।"

"तो तू समझता था कि कोई जंगली जानवर होगा।" वह बोला—"अरे भीटिया ! आज मैं तुम दोनों की बात सुन रहा था। कितनी मीठी-मीठी बातें कर रहे थे तुम दोनो ! बुढ्ढा हो गया हूँ, बुढ्ढा। छिः छिः ! बुढ्ढे को बच्चों के बीच में नही आना चाहिए। अच्छा भीटिया ! रोटियाँ है?"

झीटिया रोटियों को छिपाता हुआ भयभीत दृष्टि से, गैंने को देखने लगा। गैले की आँखों में भूख की आग से उत्पन्न एक विचलित करने वाली हिंसा थी।

"मैं कहता हूँ कि दो रोटियाँ मुझे दे दे, मैं भूखा हूँ।" गैले के चेहरे पर प्रार्थना भरी रेखायें नाच उठी।

"लो ""लो, यह रोटियाँ ?"—झीटिये ने कांपते हुए हाथों से गैला की ओर रोटियाँ बढ़ा दी।

गैले ने दो रोटियों को देखकर कहा—"तू बहुत ही चोखा है, झीटिया, भगवान् तुझे खुश रखे।" उसका हाथ महात्मा की तरह आशीर्वाद देने उठ गया।"

"प्रीत ? क्या बकते हो गैले ?"

"गैला बकता नहीं, झीटिया, प्रीत छिपाई न छुपे, समझे ?"

क्या मैं कूड़ बोलता ? कूड़ (झूठ) बोलने की मेरी आदत नहीं है, झीटिया। चौधरी को साफ-साफ कह दे और शादी कर लें।

झीटिया का चेहरा दूध-सा सफेद हो गया। गैले का क्या भरोसा ? जहां चाहेगा, ढोल पीटता फिरेगा। बड़ी मुश्किल होगी। सहमता-सहमता झीटिया बोला—"यह बात किसी से कहना मत। शायद काका को बुरा लगे। वे यह सोचने लगे कि झीटिये ने जिस थाली में खाया उसी मे छेद करने लगा।"

'नही कहूँगा इसलिए ही तो कहता हूँ कि धर्म की बात कर लें। झट-पट ब्याह रचालें।" चल मेरे साथ।

*"चांदा थारे चानणे सूती पलंग बिछाय,
जब जागू तब अकेली, मरूं कटारी खाय।"

---

*हे चन्द्र ! मैं तेरे प्रकाश में पलंग बिछाकर सो गई हूँ और जब जागती हूँ तब अपने आप को अकेली पाती हूं। जी चाहता है कि कटार खाकर मर जाऊं।

तब उसके दिमाग में एक उपाय सूझा– 'मैं क्यों नहीं इस खिड़की से रस्सी फेंक कर खीव जी को महल में बुलवालूं ?"

उसने वैसा ही किया और खीव जी महल में आ गये।

आधी रात तक उन दोनों ने चौपड़-पासा खेला। प्रेम की बातें की और सवेरे होते-होते खीव जी वापस चला गया।

इसी तरह हर रात खीव जी आता था और तड़के वापस चला जाता था।

एक दिन तड़के ही आभलदे के महल में राजा और रानी पधारें। उस समय आभलदे और खीवजी दोनों जने मस्ती की नींद सो रहे थे। डावड़ी ने घबराये स्वर में उतावली से आकर कहा—"बाई सा! जागिए। राजा जी पधार रहे हैं।"

"हैं! आभलदे के हृदय पर आघात लगी।

"तो ? डावड़ी विस्फारित नयनों से आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगी।

"खीव जी! जल्दी से खिड़की से कूदिये।"

खीव जी ने तुरन्त कूदने की तैयारी की। पर मन नहीं माना। वियोग का दुख उनकी आंखों में छा गया। मोतियों जैसे आंसू उनकी आंखों से छलक पड़े। बोले—"प्रिये! अब मिलना कब होगा ?"

"जब प्रभु चाहेगा ?"

"मुझे भूलोगी तो नहीं ?" खीवजी का हृदय भर आया।

इस पर आभलदे ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया—

*"आभा अम्बर ढह पड़े, धरती धान न होय,
जे दिवले पाणी जले, तो दूजा साजन होय।"

यानी उसने प्रतिज्ञा की कि यदि मेरा कोई प्रीतम होगा तो अकेला तू ही।

---

* आकाश गिर पड़े। धरती पर धान न हो और यदि दीये में पानी जले तो मेरा भी दूसरा पति हो सकता है।

खीवजी कूद पड़ा लेकिन उसकी तलवार वहीं पर छूट गई जिस पर उसका नाम–गाम का पता खुदा था ।

फिर क्या था ? सारे रावले (अन्तःपुर) में, सारे गढ़ मे सारे नगर में यह बात हवा की भांति फैल गई । सामान्तों एवं सरदारों ने इस बात को अपना अपमान समझा । उन्होंने एक ही स्वर में गर्ज कर कहा—"एक राजा की बेटी के कक्ष में नाकुछ ठाकुर का लड़का आकर चला गया, ऐसी कुलकलंकिनी की गर्दन धड़ से अलग कर देनी चाहिये ।"

आभलदे के बाप ने स्वयं गर्ज कर कहा–"चाहिए नही, काट दो, मेरी सात पीढ़ी में भी ऐसी निर्लज्ज धीव (पुत्री) पैदा नही हुई । क्या यही सावित्री और सीता की बेटियों के लिए शेष रह गया है ?"

पर आभलदे की माँ अपनी बेटी की ढाल बनी रही और यह तय किया गया कि भविष्य में आभलदे को रावले के बाहर एक कदम भी नही रखने दिया जायेगा ।

हुआ भी ऐसा ही, भीटिया ! बेचारी प्रेम–दीवानी आभलदे खीवजी की याद में सूखकर कांटा होने लगी । भागने का उपाय सोचने लगी । अन्त में उसकी मा राजी हो गयी ।

एक दिन रानीजी ने राजा से विनती की—"महाराज ! आभलदे इस बन्दी-गृह मे घुट-घुट कर मर रही है । यदि आप आज्ञा दें तो वह पुष्कर तीर्थ कर आये । धर्म का धर्म होगा और बाई–सा का हवा पानी भी बदल जाएगा ।"

सो एक दिन आभलदे पुष्कर चली ।

पर सच बात तो यह है, कि पुष्कर तो एक बहाना मात्र था, दरअसल उसे अपने प्रेमी खीवजी से मिलना था ।

खींवजी के गाँव के समीप ही डेरा डाला गया। स्वामीभक्त बांदी द्वारा खींवजी को इस बात की खबर पहुँचाई गई।

पर खेमे के आगे कड़े सिपाहियों का पहरा था।

क्या करता खींवजी?

भाभी के पांव पकड़े। भाभी ने मजाक से कहा—"देवरजी, मैं आपको अपने संग ले तो चलूंगी पर आपको मूँछें मुंडवानी पड़ेंगी।'

"मूंछें! खींवजी की आंखें विस्फारित हो गईं।"

"हां, बांकड़ली (बलदार) मूँछें, बिना मूँछें मुंडवाये आप लुगाई कैसे बनेंगे?"

"तो क्या ... मुझे ... लुगाई ... बन ... ना?"

बीच में ही भाभी मुलक (मुस्का) कर बोली—"हां, आपको लुगाई ही बनना पड़ेगा।'

"ऐसा तो नहीं हो सकता।"

"फिर टापते रहिये, भंवरजी। सुना है, राजकुंवारी आभलदे आपकी दीवानी है, आप से चार नजर होने के लिए बेचारी यहां तक आयी है और आपने ... ?"

तभी गाँव की प्रसिद्ध ढोलनी गढ़ के पीछे की ओर अपने मधुर स्वर में गा उठी—

"रसिया म्हे जोगण बणी थारी रे
थारे खातर म्हांरा सावरा, घर-घर ढूंढूंली म्हें फेरी रे।"

दो पंक्तियां सुनते ही भाभी सा ने चुटकी लेते हुए लम्बे स्वर में कहा—"यह बोली इस ढोलनी की नहीं है, मेरे देवर जी! इसी आभलदे की है, जो आपसे मिलने के लिए यहां आई हुई है।"

ढोलनी का स्वर और दर्दीला हो गया। ऐसा महसूस होता था जैसे उसके दर्द में सारी जनता का दर्द है। वैसी तड़प है जैसी इस रेतीली शुष्क प्रान्त की प्रत्येक विरहण के स्वर में होती है—

*"चितवन चोट कालजे लागे, नैणां छलके नीर, हो""
इये मरज काई न दवा है, छिण-छिण बढतो पीर रे, रसिया "
दिन नई चैण, रैन नई निंदिया सुपने में तू आजा, हो""
म्हे बावली, तू बेदरदी, नैण से नैण मिलाजा रे""
रसिया मैं जोगण बणी थारी रे""

गीत रुका। ऐसा महसूस हुआ कि जैसे सारे वातावरण में, पृथ्वी-आकाश मे, तन मे, मन मे हर जगह एक उदासी छा गई। भीटिया, उस ढोलनी के गले मे बड़ा दर्द था। जो सुनता था वह मस्त हो जाता था।

खींवजी मस्त हो गये। उसकी भाभी मस्त हो गई। क्या हिये को छूने वाला गीत गाया था—रसिया म्हें जोगण बणी थारी रे""। खींवजी की भाभी थोडी देर तक मन्त्र-मुग्ध रही और फिर हठात् बोली—"देवरजी! आप अब भी मूँछों के चक्कर में पड़े है। मैं कहती हूँ कि काट डालिए न, इन निगोड़ी मूँछो को, घाघरा और ओढना ओढ़ मेरे संग चल पडिये। आभलदे से मिला दूंगी।"

"पण (पर) मै मूँछें किसी भी सूरत मे नही मुंडवाऊँगा।"

---

* रसिया! मैं जोगन तुम्हारी बन चुकी हूँ। तुम्हारे लिए ऐ मेरे प्रीतम मैं घर-घर फेरी दूंगी।

चितवन की चोट कलेजे पर लगी जिससे नैन से अश्रु छलक पडे हैं। इस प्रेम रूपी रोग की कोई दवा ही नहीं है, बल्कि इसकी पीडा पल-पल बढ़ती जाती है।

मुझे दिन को चैन नही मिलती है, रात को नीद नही आती है अतः तू सपने में आजा। मैं पागल हूँ और तू निर्मम है तभी तो नैन से नैन नही मिलाता है। हे रसिया! मैं जोगन तुम्हारी बन चुकी हूँ-लेखक द्वारा लिखित।

"आप लुगाई तो बन जायेंगे ?"

"हाँ !" उनके अन्तःकरण ने उनके मस्तिष्क की आज्ञा लिए बिना ही कह दिया ।

भाभी गम्भीर हो गई । चुटकी बजाती हुई बोली—"एक बात मेरी समझ में आई है कि आप घूंटों (घूँघट) निकाल कर इन निगोडी मूँछों को लूका (लुकाना) लीजियेगा ।"

"हाँ, यह बात पत्ते की हुई, चलिए ।"

खीवजी को लुगाई बनना पड़ा । प्रेम का मामला कुछ ऐसा ही बेढब होता है । मिलन हुआ । खीव जी और आभलदे ने अपने-अपने मन की बात पूरी की । लेकिन प्रीत छुपाइ न छुपे । भीटिया, इस बात की खबर किसी भी तरह चित्तौड़गढ पहुँच गई । फिर क्या था ? राजाई चीख पड़ा । उसकी भुजायें फड़कने लगी । निश्चय किया गया कि आभलदे का ब्याह खीवजी स कर दिया जाय । नारियल भी भेज दिया गया ।

खीवजी अपने हिवड़े में खुशियों का समुन्दर लिए चित्तौड़गढ पहुँचे जहाँ भरे दरबार मे उनको कत्ल कर दिया गया ।

भीटिया भय से चिहुँक उठा—"कत्ल कर दिया गया ? क्यों, बाबा ? उसे तो ब्याह के लिये बुलाया गया था ।

"इसे राजनीति कहते हैं, भीटिया राजनीति, जिसमे धर्म-कर्म, सच-झूठ, भला-बुरा, बदमासी-भलाई सभी इस तरह वेश बदलती है जिस तरह अपने गाँव का बहुरुपिया । सामन्तो एवं सरदारो ने इस कत्ल को अपनी अक्ल की वह बढिया उपज बताई जिसने उनकी आन-शान की रक्षा की । प्राण पर ही तो शान का झण्डा लहराया है, बेटा ।"

गैले ने कथा आगे बढ़ाई–कवि कहता है कि आभलदे ने पार्वती जी की प्रार्थना की, सच्चे दिल से विनती की, रो-रोकर, चीख-चीखकर

अरज की जिससे माँ पार्वती का हृदय पिघल गया और उसने ग्राभलदे को वरदान देना चाहा। ग्राभलदे ने खीवजी को मांगा। पार्वती ग्राभलदे का मुँह देखती रह गई पर वचन की बात ठहरी। उसने महादेव को पुकारा। महादेव ग्रा तो गये पर उन्हें पार्वती पर बड़ी रीम ग्राई।

कहने लगे—"मै तेरे कहने मे किस-किसको जिंदा करता फिरूँगा ?"

शिवजी की यह बात पार्वती के ग्रात्म-सम्मान पर तीखे तीर सी लगी। वह फुत्कारती हुई बोली—"यह बात है तो लो, मै उड़ी चिड़िया बनकर, फिर पी लीजियगा भाँग-धतूरा।

शिवजी के छक्के छूट गये। कहीं पार्वती चिड़िया बनकर उड चली तो भाँग घोटने की बडी ग्रौर कडी समस्या खड़ी हो जायेगी। इसलिए उन्होने खीव जी को दुबारा जीवन-दान दिया।

तब ससार की कोई भी ताकत उन्हे ग्रलग नही कर सकी। वे ग्रमर हो गये।

कहानी खत्म हो गई।

भीटिया गले की ग्राँखो में ग्राँखें गडाकर थोडा-सा मुलकते हुए बोला—"ग्राखिर प्रेम करने वाले मिल ही जाते है।"

"पहले मिलते थे, पर ग्रब नही।"

"क्यों?" विस्मय भर ग्राया उसकी ग्रावाज मे।

"ग्राजकल शिव-पार्वती का सत् कम हो गया है। ग्रब वे मरे हुए को वापिस जिंदा नहीं कर सकते।" उसके स्वर में व्यंग भरा कटाक्ष था।

"क्यो ?"

"कलियुग है न ? इसलिए बेटा, प्रीत मत करो। यह प्रीत बहुत बुरी है, ग्रपने बदले जीवन ले लेती है, जीवन।"

ग्रौर गैला वेदना मे डूबा हुग्रा, धीरे-धीरे रेत पर ग्रपने पग के चिन्ह छोड़कर चलता बना।

भीटिया भारी मन लिए शांत स्वर में गुनगुना उठा—

*"थारी तो म्हारी प्रीतलड़ी रे जूरी,
ग्रणबोली मरी जाय, बोली तो होती ये"......"

---

*तेरी ग्रौर मेरी प्रीत, हे गोरी ! ग्रनबोली ही खत्म हो रही है, जरा बोल तो सही।

: २ :

"वास्तव में कोई भी वस्तु संसार मे न तो सुन्दर है, न असुन्दर मनुष्य की मानसिक स्थिति पर उसकी सुन्दरता और असुन्दरता निर्भर है।" विश्व के महान् नाट्यकार विलियम शेक्सपीयर के नाटक 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' की यह पंक्तियाँ गाँव के नये मास्टर नारायण के मस्तिष्क मे ज्वार-भाटे की तरह आ-जा रही थी।

रात का समय था। एकदम शांति छाई हुई थी कि पेड़ के पत्ते की भी हिलने की खड़खड़ाहट सुनाई पड़ जाती थी।

मास्टर नारायण दीये के हल्के प्रकाश मे चिंतामग्न बैठा था। उसके सामने ढोलकी का चेहरा नाच रहा था।

गाँव मे यदि कोई लड़की उसके मन पर प्रभाव कर सकी थी तो वह थी—ढोलकी। निर्दोष और चचल।

पहली बार जब वह इस गाँव में आया था तब सैर करने धोरों (रेत के टीलें) की ओर चला गया था।

सध्या का समय था। गर्म लू बहनी बन्द हो गई थी। गाँव के पशु गोचर भूमि से लौट रहे थे। उनके गले मे बधे बड़े-बड़े घटे टन""टन""टन""टना""टन""की गम्भीर आवाज करते हुए अपने अपने स्वामियो के घरो की ओर जा रहे थे।

मास्टर रेत पर पेट के बल सोया हुआ उन पशुओं के पंक्तिबद्ध जाने को देख रहा था और सोच रहा था—"आदमी से अधिक ये सभ्य है। दो-दो की जोडी कितनी बराबरी से चल रही है कि एक पाँव का भी फर्क नही और एक हमारी स्काउट रैली थी—बेचारा स्काउट मास्टर चीखता-चिल्लाता परेशान हो उठता था, उसके ललाट पर पसीना उभर आता था पर लड़को के कदम प्राय: आपस मे नही मिलते थे""""! तभी उसे कदमों की आहट सुनाई पड़ी।

"कुण है ?" एक अपरिचित-सी ध्वनि संगीत के तारों सी झंकृत हो उठी।

मास्टर ने करवट बदली–एक छोकरी उसके सामने खड़ी थी। चार नजर होते ही उस लड़की ने तुरन्त उसकी ओर पीठ कर दी।

"तूने मेरी ओर पीठ क्यों कर दी ?"

"आप कौन हैं ?"

"मैं मास्टर हूँ, कल ही शहर से आया हूँ ?"

"शहर से।" युवती उसके सम्मुख हो गई। मास्टर ने उसकी आंखों में कुतूहल देखा।

"तुझे अचरज क्यों हो रहा है ?" मास्टर ने गंभीरता से पूछा।

"अचरज होना ही चाहिये, देखो न माटरजी, आप कितने दुबले है ? जैसे आपने घी-दूध आँखों से देखा ही नहीं है ?"

"तो अब तू दिखा दे।" मास्टर ने चुटकी भरी।

"जरूर, माटरजी, अभी आप हमारे पावणे (मेहमान) हैं।"

मास्टर ने जरा मुस्करा के दूसरी ओर मुँह घुमाकर कहा–"न भई, न, मैं पावणा बनने को कतई तैयार नहीं हूँ।"

"क्यों ?" युवती के ललाट पर सलवटे पड़ गई।

"इसलिये कि तीन दिन पावणा और चौथे दिन अणखावणा (जो अच्छा न लगे)। अपनी बेइज्जती कौन करायेगा?" अब मास्टर के स्वर में बनावटी गंभीरता थी।

"माटर जी ! हम गाँव वाले ऐसे नहीं हैं। धान और चिथड़ों से मिनख (मनुष्य) को ही बेसी समझते हैं। मिनख के सामने क्या कद्र है एक मुट्ठी अनाज की ? माटरजी, यह गाँव है, जहां पावणों की आव-भगत करना धर्म समझा जाता है।"

मास्टर को युवती की दुख-छाई आकृति पर पश्चाताप हुआ। वह सोचने लगा कि उसने खामखा ही ऐसा प्रश्न करके इस बेचारी

को कष्ट दिया है । अतः क्षमायाचना भरे स्वर में बोला—"खमाँ (क्षमा) कर दे, मुझसे भूल हो गई ।"

"कोई बात नहीं, अच्छा, पहले बताइये माटर जी, कि आपने डेरा कहाँ डाला है ?" उसने बात का रुख बदलते हुए कहा ।

"पाठशाला के पास वाले लाल घर में ।"

"रोटी-बाटी का क्या इन्तजाम किया ?"

"आज तो भूखा ही सो जाऊँगा और कल से कोई इन्तजाम कर लूँगा या हाथ से ही बना लूँगा ।"

"भूखे मत सोइये, भूखे सोने से आत्मा को कष्ट पहुँचता है, आत्मा को कष्ट देने से भगवान विराजी हो जाता है। इसलिए आज मैं आपके लिए अपने घर से खाना पकाकर ला दूँगी ।"

मास्टर ने एक बार रोकना चाहा, पर फिर न जाने क्या सोचकर चुप हो गया । उसे ढोलकी का आना और उससे बातचीत करना अच्छा लग रहा था । उसे अपनी मृत बहिन की याद हो आई।

"मैं जाती हूँ ।"

"जा, पर तेरा नाम ?"

"ढोलकी ।"

ढोलकी हवा में अपना आँचल उड़ाती संध्या के गहरे होते अन्धेरे में अदृश्य हो गई ।

× × ×

मास्टर के घर के आगे ही चार-पांच छोरे तालिका बजा-बजाकर गा रहे थे :—

"किसका भीटियाँ, किसकी टर्र ।
चाल म्हाँरी ढोलकी ढमाकडम ॥"

छोरों का स्वर पतला और मीठा था । मास्टर का मन रीझ

गया । चुपचाप सुनने लगा ।

ढोलकी ने उसके ध्यान को भंग किया—"क्या देख रहे हो माटरजी ?"

"देख नही रहा हूँ, सुन रहा हूँ—बच्चो का गीत ।"

"यह कोई गीत है, हूँ ! चलिए भीतर ।"

तभी छोरों ने ढोलकी को देख लिया । लगे नाच-नाचकर जोर से गाने :—

"किसका भीटिया, किसको टम ।
चाल म्हांरी ढोलकी ढमाकढम ॥"

छोरों ने तब और उछल-उछलकर यह वाक्य दोहराना शुरु किया :—

"चाल म्हांरी ढोलकी ढमाकढम
ढोलकी ढमाकढम.........
ढोलकी ढमाकढम.........
ढमाकढम........"

ढोलकी ताव मे आ गई । भड़ककर बोली—"चुप हो जाओ वर्ना मैं ठीक कर दूंगी ।"

उसकी इस डांट का असर उल्टा ही हुआ । छोरे और जोश मे भर उठें । ढोलकी ढमाकढम.........
ढोलकी ढमाकढम.........
ढमाकढम.........

मास्टर इस मजेदार बात पर खिल-खिलाकर हँस पड़ा । ढोलकी बिगड़कर बोली—"आपको हँसी सूझ रही है, और मेरा जी जल रहा है ।" उसकी आंखों मे नाराजगी झलक रही थी ।

ढोलकी घर मे घुस गई ।

मास्टर के होठो पर अब भी हँसी नाच रही थी ।

"आपको हँसी क्यों आ रही है ?"

"तुझे गुस्सा क्यो आ रहा है ?"

"छोरो की बात पर ।"

"क्यो ?"

"मुझे चिढ़ाते हैं न ?"

"*कौनसी तू लूली-लंगड़ी, अंधी, बहरी, कालो-कोजी (खराब)* है कि तुझे ये छोरे चिढाने लगे ।"

'ढोलकी दमाकदम–यह क्या है ? चिढ़ाना नही तो क्या मुझे *राजी करने के लिए यह गाना गाया जाता है ?" गर्म स्वर मे* ढोलकी एक ही सांस मे बोल गई ।

"यह तो बच्चो का खेल है ।"

"खेल ? हूं ! अच्छा आप यह रोटियाँ खा लीजिए, मैं चली ।" ढोलकी की नाराजगी अब मास्टर से छिपी न रह सकी ।

"अरी क्यों ? क्या पावणो की खातिरदारी इसी तरह की जाती है ?"

"अभी मेरा मिजाज गर्म है, कहीं झगड़ा हो जायेगा तो अच्छा नही रहेगा, मैं चलती हूँ ।" ढोलकी तीर की तरह चली गई ।

× × ×

मास्टर ने उसी रात सपना देखा कि एक परी चांद के रथ पर चढ़कर आकाश से उतर रही है । उसने अत्यन्त सुन्दर, सफेद व चमकदार वस्त्र पहन रखे है तथा उसके सिर पर मुकुट है जिसमें झिलमिलाते तारे जड़े हुए है । उसका अप्रतिम सौन्दर्य स्वर्ण-सज्जित होकर मुखरित हो उठा है । उसके सुन्दर होठो पर वही विचित्र हँसी है । वह मास्टर के समीप आई । मास्टर भी एक राजकुमार की पोशाक मे था ।

मधुर स्वर में बोली—"मास्टर जी, मैंने सुना है कि तुम मुझे प्यार करते हो ?

"हां परी ! मैं तुझे हृदय से चाहता हूँ।"

"छल तो नहीं कर रहे हो ?"

मास्टर ने देखा कि धरती पर भूकम्प आ रहा है। पेड़-पौधे महल-मकान सब-के-सब ढह रहे हैं। नदियों के सारे रुख नृशंस विध्वंस लिये बदल गए हैं जिनमें ठीक उस ओर परी जैसी पोशाकें पहने हजारों युगल प्रणयी थपेड़ों में हाहाकार मचाकर नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं।

मन्दिरों के पुजारी माला जपकर अपने उद्धार की प्रार्थना कर रहे हैं कि प्रभो ! हमें इस संकट से उबारो।

और तभी उसने देखा एक काला दैत्य उसकी ओर बढ़ता चला आ रहा है। पौराणिक कुंभकरण की भांति विशाल और भयानक वह दैत्य अपने पावों से राजकुमारों व राजकुमारियों का नाश करता, अट्टहास करता, हाथों को फांसी के फन्दे की शक्ल में बनाता, उसके बिल्कुल नजदीक आ जाता है।

"तुम कौन हो ?"

"समाज ?"

"समाज ? तुम हमें क्यों मार रहे हो ?"

"तुम मास्टर हो, यहां गांव वालों की सेवा करने आये थे पर तुम अपना कर्तव्य-शिक्षा-दान भूलकर प्रेम लीला करने लगे। इसे गांव सहन नहीं कर सकता।" तुम्हारा कर्त्तव्य है-शिक्षा से अज्ञान को दूर करो और तुम प्रेम कर रहे हो ?

"प्रेम करना कोई पाप नहीं।"

"पाप है। तुम जिस पवित्र पद पर हो, वहां इसे अधर्म क

जायेगा। पद को प्रतिष्ठा व दायित्व को सच्चाई से पूरा करो मास्टर।"

× × ×

मास्टर की नींद टूट गयी। जजाल समाप्त हो गया।

भयानक सपने के कारण मास्टर को फिर नींद नहीं आई गाँव की काली रात का यह काला सपना कितना निर्दयी था, उसकी कल्पना भी वह नहीं कर सकता था।

फिर वह अपने आप पर विचारने लगा कि क्यों उसने अपने मन में पाप भरे विचार उपजाये? यह उन्ही पापों का फल है कि उसने कुंवारी धरती के बारे में बुरी बातें सोची। वह एक मास्टर है। गाँव में शिक्षा की एक पुण्यमयी ज्योति जलाने के लिए आया है जिसके प्रकाश में यह गाँव अपनी जिन्दगी की असलियत जान सके। न्याय-अन्याय का मापदण्ड गरीबी और अमीरी के पलड़ों पर नहीं सच्चाई के रास्ते कर सके और वह आते ही एक युवती के जो अनपढ़, गवार और भोली है, पर मुग्ध होकर अपने को भटका गया। वह युवती उसे इतनी खूबसूरत क्यों लगी? उसका ना कुछ सौंदर्य उसके मन पर काले बादलों की तरह क्यों छा गया जिससे वह अपने ज्ञान को भूल बैठा? कितना नादान है वह, कर्त्तव्य-विमुख, विचलित। नहीं, उसे अपने जीवन के हर क्षण को सयत दायरे में रखना चाहिये अन्यथा समाज का दैत्य……।

"माटरजी!" ढोलकी की आवाज आई।

"कौन? ढोलकी।"

"जी, माटरजी, दूध देने आई हूँ। माँ ने कहा है कि माटरजी को हर रोज सेर भर दूध दे आया कर जिससे सेहत चोखी रहेगी और वे टाबरों (बच्चों) को बढ़िया तरीके से पढ़ा सकेंगे।"

"क्या भाव देगी तेरी माँ यह दूध?"

"उसने कहा है कि घर के माणसों (मनुष्य) से क्या भाव-ताव ? जो दे देंगे, वही ले लेंगे और माँ ने हँसकर एक कहावत कही—

*भाई रो धन भाई खायो,
बिना बुलाए जीमण आयो,
आम्बडियो पण पड़ियो नईं,
घी ढुलियो तो मूंगा मही."

मास्टर हँस पड़ा—'क्या तेरी माँ कहावत भी बनाती है ?"

"मेरी माँ !" ढोलकी बर्तन में दूध डालती-डालती रुक गई और आश्चर्य से मास्टर की ओर आँखें जमाती हुई बोली—"क्या कहते हैं, माटर जी, क्या मेरी माँ कहावतें बनाती हैं ? उसके लिए तो काला आखर भैंस बराबर है ।"

उसने बर्तन में दूध डालकर एक आले में रखा और दूध के बर्तन को कपड़े से ढँकती हुई शांत स्वर में बोली—"आपको एक खाना पकाने वाली की जरूरत है न ?"

"हाँ !"

"आप जगन्नाथ की बेटी को रख लीजिए । बेचारी बड़ी तकलीफ में है । ऊपर से कंगाली में आटा और गीला हो गया कि उसका ससुर भी मर गया । पंचायत ने उस बुड्ढे के क्रिया-कर्म के नाम पर गरीब का घर भी बिकवा दिया । बेचारी को अब खाने के लाले पड़ रहे हैं ।" अन्त का वाक्य बोलते-बोलते ढोलकी का स्वर दर्द से भर उठा। उसकी आँखों में दुख की हल्की छाया-सी पैदा हो गई ।

"उसका घरवाला कहाँ है ?" मास्टर ने अनमने भाव से पूछा ।

"वह तो बहुत पहले ही मर गया । अम्बा काकी कहती हैं कि यह हरखा डाकण (डायन) है, इसने ही अपने खसम को पका कर खाया है । क्या यह सच है, माटर जी ?"

*कोई नुकसान की बात नहीं ।

"माटरजी !" हरखा ने सहमते हुए पुकारा।

'क्या है ?"

"आज मुझे थोडा मोड़ा हो गया, आँख निगोड़ी खुली ही नहीं।" उसने अपने आपको कोसने का अभिनय किया।

'कोई बात नहीं। मैंने सोचा कि तेरी तबियत खराब हो गई होगी इसलिए तू नही आई है। अब तुरत-फुरत दूध गर्म कर ला।"

"चुटकी बजाते लाई।" हरखा तुरन्त अपने काम में लग गई। वह दूध को चूल्हे पर चढाकर मास्टर के पास आकर उत्सुकता से बोली "माटरजी" छगू कह रहा था कि आप एक 'विनती" पाठ-शाला के लिए तैयार कर रहे हैं। आप जरूर करिये, मैं अभी बढिया दूध गर्म कर लाती हूँ।"

हरखा फिर कमरे से बाहर चली गई।

मास्टर का मन हरखा के निर्दोष सौंदर्य पर जब-जब जमता था तब-तब दया से भर आता था।

' माटर जी, दूध।"

"रख दो, खांड (चीनी) तो पूरी है न ?" मास्टर ने चौंक कर कहा।

"तीन चम्मच। जरा चखकर देखिये।"

मास्टर ने दूध चखकर कहा—"आज तूने दूध बहुत ही बढिया ..या है, जी चाहता है कि तुझे इनाम दूँ।"

हरखा अपनी इस सफलता पर मन-ही-मन मुस्करा उठी।

"बोलो, क्या इनाम लोगी ?"

"इनाम""मैं""मैं""।" हरखा लज्जा गई।

"बोलती क्यों नही ? शर्माती क्यों है ?" मास्टर ने झट से हरखा का हाथ पकड़ लिया। यह सब पलक झपकते हुआ। क्यों हुआ ? यह मास्टर खुद नहीं जान सका। लेकिन जब हरखा ने हाथ छुड़ाने की

"नहीं, ढोलकी। यह केवल अन्ध विश्वास है तू उसे भेज दे, मैं उसे कपड़ा और रोटी दोनों दूंगा। नकद पैसा नहीं दे सकता।"

"नकद माँगता ही कौन है ? उसे तो दो-वक्त रूखी-सूखी रोटियाँ चाहिये। पर, मास्टर जी, हरखा बहुत ही भली है। किसी का भी बुरा नहीं करती। गाय है, गाय।" कहती कहती ढोलकी फुदकती हुई चली गई।

मास्टर न जाने किसी विचार में बड़ी देर तक खोया रहा कि उसे यह भी पता न चला कि हरखा आकर उसके सूने घर का कूड़ा-करकट बुहार रही है और ढोलकी खड़ी-खड़ी गर्व-भरी आँखों से उसे देख रही है।

× × ×

भोर हो गई थी।

चिड़ियों की चक-चक तथा गायों के रंभाने ने सोने वाले प्राणियों में नई चेतना भर दी थी। कहीं-कहीं मुर्गे की बाग भी सुनाई दे जाती थी।

मास्टर के घर में बुहारने की आवाज साफ आ रही थी। इस आवाज ने मास्टर का ध्यान क्षण भर के लिए विचलित कर दिया— "हरखा! आज मोड़ी (देर से) क्यों आई? उसे जरा ताड़ना चाहिये, पर थोड़ा अपने मन से।" लेकिन जब हरखा ने उसके कमरे में प्रवेश किया तो मास्टर संस्कृत की पुस्तक निकाल कर पढ़ने लगा—

"येषां न विद्या न तपो न दानम्,
ज्ञानं न शीलं न गुणों न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुव भारभूता,
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।

अर्थात् जो मनुष्य न विद्वान हैं, न तपस्वी हैं, न दानी हैं, न ज्ञानी हैं, न सदाचारी हैं, न धर्मात्मा हैं, वे पृथ्वी पर भार बढ़ाने वाले पशु हैं, जो मनुष्य के रूप में इधर-उधर घूमते रहते हैं।

"माटरजी !" हरखा ने सहमते हुए पुकारा।

"क्या है ?"

"आज मुझे थोड़ा मोड़ा हो गया, आँख निगोड़ी खुली ही नहीं।" उसने अपने आपको कोसने का अभिनय किया।

"कोई बात नहीं। मैंने सोचा कि तेरी तबियत खराब हो गई होगी इसलिए तू नही आई है। अब तुरत-फुरत दूध गर्म कर ला।"

"चुटकी बजाते लाई।" हरखा तुरन्त अपने काम में लग गई। वह दूध को चूल्हे पर चढाकर मास्टर के पास आकर उत्सुकता से बोली "माटरजी" छगू कह रहा था कि आप एक 'विनती" पाठ-शाला के लिए तैयार कर रहे हैं। आप जरूर करिये, मैं अभी बढ़िया दूध गर्म कर लाती हूँ।"

हरखा फिर कमरे से बाहर चली गई।

मास्टर का मन हरखा के निर्दोष सौंदर्य पर जब-जब जमता था तब-तब दया से भर आता था।

"माटर जी, दूध।"

"रख दो, खांड (चीनी) तो पूरी है न ?" मास्टर ने चौंक कर कहा।

"तीन चम्मच। जरा चखकर देखिये।"

मास्टर ने दूध चखकर कहा— "आज तूने दूध बहुत ही बढ़िया बनाया है, जी चाहता है कि तुझे इनाम दूँ।"

हरखा अपनी इस सफलता पर मन-ही-मन मुस्करा उठी।

"बोलो, क्या इनाम लोगी ?"

"इनाम""मैं""मैं""।" हरखा लज्जा गई।

"बोलती क्यों नहीं ? शर्माती क्यों है ?" मास्टर ने झट से हरखा का हाथ पकड़ लिया। यह सब पलक झपकते हुआ। क्यों हुआ ? यह मास्टर खुद नहीं जान सका। लेकिन जब हरखा ने हाथ छुड़ाने की

कोशिश नहीं की तब मास्टर की दृष्टि हरखा के चेहरे की ओर उठी हरखा की आँखें जमीन की ओर झुकी हुई थी। वह धीरे-धीरे सी रही थी।

कुछ क्षण तक दोनों किंकर्तव्य विमूढ़ मे खड़े रहे। फिर हर ने सहमते हुए कहा—"मेरा हाथ छोड़ दीजिए। मैं विधवा हूँ।"

मास्टर ने हाथ छोड़ दिया—"ओह! हरखा, मुझे माफ कर दे मुझे तेरा हाथ नहीं पकड़ना चाहिए था।" मास्टर व्यथित हो उठा उसका स्वर काँप रहा था।

हरखा रसोईघर मे चली गई। बर्तनों की आवाज से माल होता था कि वह खाना बनाने की तैयारी मे है। पर मास्टर बाचा हो उठा। आदमी इतना कमजोर क्यों है? वह क्यों नहीं अपने हृद के उस झंझा को रोक पाता जो कल उसे पतन के गहरे गड्ढे फेंकने वाला है? मैं पापी हूँ। कमजोर हूँ। उसने अपने धिक्कारा।

मास्टर दूध की ओर बिना ध्यान दिये सोच रहा था, मैंने हरख का हाथ क्यों पकड़ा? वह मेरी कौन है? मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। किसी की मजबूरी का बेजा फायदा उठाना हम जैसे बुद्धिजी- वियों का काम नहीं। वह अपने मन में क्या समझती होगी? सोचती होगी कि यह शहर वाले सब के सब लफगे होते है। गाँव की इज्जत से खेलने आते है। उनकी बहू-बेटियों की आबरू को रोटी के बदले खरीदना चाहते हैं।" मास्टर ग्लानि से भर उठा। उसे अपने मन पर बहुत क्रोध आया, "यह मन का पछी ही बुरा है। न यह उड़ता और न मैं गलती करता। चलो, चलो, मुझे हरखा से साफ कह देना चाहिये कि मैंने तेरा हाथ कोई बुरी नीयत से नहीं पकड़ा था। जानता हूं कि यह सब अप्रत्याशित हुआ है।"

दूध ठंडा हो गया था । मास्टर ने उसमें अंगुली डालकर कहा—"ओह ! ठंडा हो गया—पानी की तरह ।"

वह रसोईघर की ओर चला । हरखा चूल्हे की आग को तेज करने में लग गई थी ।

मास्टर ने कठोर स्वर मे कहा—"चूल्हा मत जलाओ । आज मै खाना नही खाऊँगा ।"

"क्यों ?" हरखा के मुंह से हठात् यह शब्द निकला और उसकी आंखों मे भय नाच उठा । वह मास्टर को रोकने के लिए दरवाजे की ओर भागी, पुकारा भी, पर मास्टर ने मुड़कर देखा तक नहीं । हरखा गहरी चिंता मे डूब गई । मास्टर का न बोलना इस बात की ओर साफ संकेत था कि वह उससे नाराज है । उसकी नाराजगी का मतलब है कि उसकी नौकरी की समाप्ति । इसलिए वह रो उठी ।

हरखा की श्यामी मुख-मुद्रा पर धीरे-धीरे एक शांत स्निग्ध छा गई जैसे किसी पाषाण प्रतिमा पर वर्षा के कारण सहज सौंदर्य की दीप्ति छा जाती है । जैसे उसका उन्मन आनन कह रहा है कि उसके तन के अतुलनीय सौन्दर्य मे एक पेट भी है ।

पेट की स्मृति ही मनुष्य को दुर्बल बना देती है ।

रोने पर भी उसकी विचार-धारा उसके दिमाग में तूफान उठाती रही कि यदि वह मास्टर जी को हाथ छोड़ने के लिए नही कहती तो वे विराजी नही होते, उन्हें रीस (क्रोध) नही आती । उन्हे रीस में लाकर उसने अच्छा नहीं किया । उसने अपने आपको झिड़का—"हाथ पकड़ लिया जिससे मेरा कौन-सा धर्म डिग गया, कौन-सी मैं अछूत हो गई, कौन-सी मेरी नाक कट गई और यदि काम-काज हाथ से निकल गया तो,……तो मैं भूखी मर जाऊंगी, दाने-दाने की मोहताज हो जाऊंगी और फिर मुझे ठाकुर-सा के डेरे मे काम करने

जाना पड़ेगा, कारिन्दा दामोदरसिंह मुझसे छेड़खानी करेगा। नहीं, न, मैं मास्टरजी से छिमा (क्षमा) माग लूंगी। कहूँगी–मैं तो आपकी शरण मे हूँ, मुझे जो भी दण्ड दे दीजिए। यह हाथ एक बार नहीं सौ बार पकड़िए, आपको कौन मना करता है। पर मुझे अपने यहां से मत निकालिए।" और वह मास्टर के बिस्तर पर पुनः सो गई।

ठीक चार बजे मास्टर के पाठशाला की छुट्टी की घण्टी बजी।

अब मास्टर का चेहरा फूल-सा खिला हुआ था। स्वस्थ और निर्मल था, उस जल की तरह जिसकी गन्दगी को ज्वार बहाकर ले गया हो। उसके चेहरे पर अलौकिक प्रसन्नता झलक रही थी। प्रसन्नता किसी को पराजित करने के बाद मिलती है। उसकी आंखों मे धैर्य की ज्योति चमक रही थी।

घर मे घुसते ही उसने पुकारा—'हरखा।'

हरखा नींद मे सोई-सोई सिसकियां ले रही थी। उसकी सिसकियों से मास्टर को पता लगा कि उसके जाने के बाद यह जी भरकर रोई होगी। यह परकटे पंछी की तरह तड़फी होगी।

"हरखा! अरे हरखा!! उठ न।" मास्टर ने हरखा के पांव को हल्के से हिलाया। वह सकपका उठी। देखा तो सन्न रह गई। अपने आंचल को सँभालती हुई डरे हुए स्वर में कहने लगी। "मुझे छिमा कर दीजिये, माटर जी।"

'क्षमा?" वह पूरा बोल भी नहीं कह पाया था कि हरखा एक सांस मे कह उठी—मैंने आपको नाराज कर दिया था न। लीजिए, यह रहा मेरा हाथ, एक बार नहीं सौ बार पकड़िए पर मुझे काम-काज से अलग मत करिए, मैं आपके पांव पड़ती हूँ, माटरजी!" वह फिर रो उठी। उसकी घिग्घी बन्ध गई।

मास्टर का हृदय दया से भर उठा। दिल ने जोर से कहा कि इस

दुःखी इन्सान को सीने से लगाकर सांत्वना से उसकी झोली भर दे, पर दिमाग ने उसे रोका कि यह कार्य व्यावहारिक नहीं है। एक भूखी नारी क्या समझेगी ? वह समझेगी कि मास्टर....

"हरखा !" मास्टर ने सयत स्वर में पूछा—"खाना बनाया है ?"

"हाँ।"

"ला, पहले खाना खिला दे, बड़ी जोर की भूख लगी है।"

हरखा खाना परोसने लगी। मास्टर तारीफ के पुल बाँधता हुआ खाना खाने लगा।

हरखा को उदास देखकर उससे नहीं रहा गया। उसने उसे हल्की-सी डाँट पिलाई—"आज तेरा मूँडा (मुँह) उतरा हुआ क्यों है ? चिड़िया की ज्यूँ चहकती क्यों नहीं, मुलकती क्यों नहीं ?"

हरखा ने अपने होंठों पर बनावटी हँसी लाने की बेकार चेष्टा की। वह हँसी भी, पर उसमें वह जीवन कहाँ था जो बसन्त की ताजगी अपने साथ लाता है।

: २ :

आकाश की काली घटाओं के साथ उमेड़ती हुआ चौमासो (पावस ऋतु) आया। क्षितिज का अरुणिम होंठ चूमता हुआ बादली का एक टुकड़ा गगन की काली घटाओं की ओर बढ़ने लगा जिससे सूरज आग के गोले की तरह घूमता एक पल के लिए नजर आया।

गाँव के बच्चे उस सूरज को कौतूहल भरी दृष्टि से देख देख कर तालियाँ बजा रहे थे और होन्होकर चिल्ला रहे थे।

इतने में उगी सूरज के नीचे से जोर से अन्धड़ उठा। बच्चे अपने-अपने घर की ओर भागने लगे—"आंधी आई""आंधी आई।"

भींटिया ढोलकी के पिता चौधरी पुरखाराम की गायों को दाना-पानी दे रहा था। अन्धड को देखकर वह घास के ढेर की ओर भागा और उस पर ऊन की छाँटी रखकर एक पत्थर का टुकड़ा ऊपर से रख दिया ताकि घास उड़े नहीं। फिर गायों के दाने-पीने में लग गया।

ढोलकी अपनी माँ का खाना बनाने मे हाथ बंटा रही थी। अँधेरा होते देख अधैर्य से बोली—"माँ, तू कहे तो घास की ढेरी सम्भाल आऊँ ?"

माँ की जबान करेले की-सी कड़वी थी, करेला भी कैसा, नीम चढ़ा। भड़कती हुई बोली—"वह राजा साहब का बच्चा क्या करेगा साँझ-सवेरे चार सेर आटा खा-खाकर फूलकर हाथी हुआ जा रहा है।" तवे पर सिकती रोटी को दूसरी ओर उलटती हुई वह थोड़ी देर के लिए रुककर फिर बोली—"तेरा बाप तो गले में जंजाल बांधता ही फिरता है। जिस आदमी को सारे गाँव में कोई नहीं रखता उसे तेरा बाप सिर पर चढ़ाकर ले आता है।"

ढोलकी बुड्ढों की तरह लम्बे स्वर मे बोली—"मा जिस माणस के जी में दया नहीं, उस मिनख का जमारा (जन्म) ही बिरथा है।"

माँ मुँह बिगाड़ती हुई बोली—"अरे, वाह! तू तो ऐसा बोल रही है जैसे मेरी मरी हुई दादी मसान (श्मशान) से उठ कर आ गई हो।"

"इसमे बिगड़ने की क्या बात है?" ढोलकी ने भी त्योरी बदली।

"सिर मत खा, जा देख आ।" माँ ने मुँह चढ़ाकर झिड़क दिया।

ढोलकी मुँह बिचका कर बाहर निकली।

अब घनघोर अन्धेरा छा चुका था। अन्धड़ के जोर से पेड़-पौधे

झुक गए थे । धूल इतने जोर में उड़ रही थी कि आँख तक खुल नहीं पा रही थी । ढोलकी एक पल के लिए बाहर निकलकर वापस भीतर घुस गई । भीतर से ही उसने पुकारा—"भौंटिया, अरे ओ भौंटिया !"

भौंटिया घर की बाड के फलसे (मुख्य दरवाजा) पर बनी झोंपड़ी मे ही बोला—"क्या है ?"

"घास उड़ती तो नहीं है ?"

"नहीं, मैंने उस पर छाटी डाल दी है, तू चिन्ता न कर, और सुन, घर से बाहर मत आना, आओगी तो धूल से आँखें भर जायेगी ।"

लेकिन भौंटिया ने देखा कि ढोलकी अन्धड़ का सामना करती हुई उसकी झोपड़ी मे आ गई है । उसके सारे बाल बिखर गए हैं तथा धूल बड़ी मात्रा मे जमी हुई दिखलाई पड़ रही है । होंठो पर भी हल्की-हल्की रेत की पपड़ी जम गई है ।

भौंटिया कुछ देर तक उसे देखता रहा । फिर स्नेह भरे स्वर में बोला—"मैंने तुझे मना किया था, फिर तू क्यों आई ?"

ढोलकी ने उसे स्नेह से घूरा—"तुझे देखने ।"

"मुझे देखने ? मुझे हुआ क्या था ?"

"मैंने सोचा कि कहीं तू अन्धड में उड तो नहीं गया है ।" और वह उसके पास बैठ गई "सच तो यह है, कि माँ से पिंड छुड़ाने मे तेरे कन्ने (पास) आ गई । कौन रोटियाँ बेले ? मेरी तो हथेलियों में पीड़ा होने लगी ।"

"सुन, ढोलकी, काम-काज से जी नहीं चुराना चाहिए ।"

"क्यों ?"

"सासरे में ननद ताने देगी ।"

"देने दो, हाँ, आज फिर बरखा होगी, अब बरखा न हो तो

चोखी (अच्छा)। अपने खेत पूरे जोश पर है।" ढोलकी गम्भीर हो गई।

तभी आकाश गरजा।

बिजलियां घटाओं का कलेजा चीरती हुई चमक उठीं। किसानों की आँखें आकाश की ओर उठ गईं। पानी बरस पड़ा। गिरती हुई बूंदों को ढोलकी और भीटिया एकटक देख रहे थे। अभी पाँच मिनट भी नहीं हुए थे कि बूंदें थम गईं। ढोलकी ने बिहँस कर कहा—"ईश्वर ने हमारी प्रार्थना सुन ली।"

"राख (खाक) सुनली।" भीटिया सरोष बोला—"यदि मेंह जोरदार बरसता और पानी का मोखा (नाला) ठाकुर सा के खेत का सत्यानाश कर देता तो कितना चोखा होता?"

"क्यों? तू किसी के लिए इतनी खोटी क्यों सोचता है?"

"ठाकुर सा की हवेली के पूरब की ओर जो खेत है न, वह मेरा अपना ही खेत है, जिसे इस ठाकुर के बच्चे ने खोंस (छीन) लिया।"

"क्यों?"

"अपना अन्नदाता है न, अन्न देना तो दूर रहा, मुँह का निवाला और खोस लेता है। बड़ा अन्यायी।" भीटिया की आँखों में क्रोध की हल्की-हल्की चिनगारियाँ फूटीं, जिन्हें देखकर ढोलकी सहम गई। "और वह साहूकार भी दूसरा काला साँप है।" वह पुनः बोला।

"तू रीस में लाल-पीला न हुआ कर, मेरा तो जी बैठा जाता है। हँस, मैं हाथ जोड़ती हूँ, भीटिया तू हँस दे।" और भीटिया के होठों पर सूखी हँसी नाच उठी।

"मैं रोटी लेकर आती हूँ, तब तक तू हाथ-मुँह धो ले।" ढोलकी भीटिया की ओर बिना देखे ही चली गई।

× × ×

सुबह हुई । आकाश मञ्जी हुई काँसे की थाली की तरह एक-दम साफ व चमकदार था । गायों के रंभाने की आवाज आ रही थी । ढोलकी की तमाम गायें खड़ी-खड़ी जुगाली कर रही थी । पूरी बीस गायें-भैंसे थीं चौधरी की, जिनकी देख-भाल आजकल भींटिया ही करता था । सहायक के रूप में थी, ढोलकी ।

ढोलकी ने "गूणिया" (दूध दुहने का विशेष बर्तन) भींटिये के हाथ में देते हुए कहा, "जल्दी-जल्दी गायों को दुह ले, काका ने कहा है कि हम दोनो को खेत जल्दी पहुँचना है ।"

मैं अभी दूह लेता हूँ, लेकिन मुझे बड़ी वाली ओडी (साग-सब्जी या घास लाने की तिनकों की बनी विशेष टोकरी) लेकर जाना है, इसलिए तू पहले चली जा, मैं लारे (पीछे) आ जाऊँगा ।" ढोलकी "हाँ" के संकेत से सिर हिलाकर चल पड़ी ।

सूरज आकाश पर चढ़ने लगा था । भींटिया खेतों से गुजरता हुआ जा रहा था । किसान मस्ती में झूमते हुए गा रहे थे ।

*ग्रे कुए बावे बाजारों में बदली,
ग्रे कुए बावे मोठ-मेवा मिसरी,
भलेरी रुत आई म्हारा देस

भींटिया गीत की तल्लीनता में इतना खो गया कि खुद ही ओडी को बजा-बजाकर गाने लगा । वह गीत के गाने की धुन में इतना लीन हो गया कि अपने खेत से बहुत दूर निकल गया । गाँव के सबसे बड़े खेजड़े के पास आकर उसको स्वप्न भग हुआ, "हैं ! मैं अपना खेत भी छोड़ आया ।"

भींटिया को अब भी अपने खेत से हार्दिक लगाव था । वह आता जाता थोड़ी देर के लिए अपने खेत की पाल पर बैठकर ठाकुर व साहूकार की मिली-भगत पर विचार किया करता था । उस समय

*राजस्थान का लोक गीत

उसकी आँखों के आगे अत्याचार नंगा होकर नाच उठता था।

बात अंग्रेजों के समय की थी।

गाँव के ठाकुर के स्वामी नगर-नरेश ने अंग्रेजों के प्रति अपनी अटूट श्रद्धा का परिचय देने के लिए सैनिक भेजने शुरू किये। ऐसा मालूम पड़ता था कि राजपूताने के सारे राजे-महाराजे दिल्ली की सार्वभौमिक सत्ता वायसराय के सामने अपना-अपना रुतबा दिखाने के लिए होड करने लग गये हैं। होड थी, युद्ध की आग में मनुष्यों की आहुति कौन राजा कितनी दे सकता है? जो जितनी ज्यादा देगा वही स्वामी के प्रति ईमानदार होने का तगमा जीतेगा।

हमारे पराक्रमी, तेजस्वी, धर्मपरायण राजा वैसे प्रजापालक थे ही, साथ ही अंग्रेजों के स्वामीभक्त गुलाम भी थे। उनकी गुलामी ही उनको वफादारी के तगमे धड़ा-धड दिला रही थी और क्यों न दिलाती? अंग्रेजों ने उन्हें अपना-गुलाम बनाकर अकर्मण्यता का वरदान जो प्रदान कर दिया था और इनके नीचे जो जागीरदार, पट्टेदार, ठिकाने वाले रहते थे। वे बेचारे गुलामों के गुलाम थे, इसलिए वे विशेष रूप से स्वामी-भक्त थे। उनकी गुलामी नीचे दर्जे तक पहुँच चुकी थी कि अपने राजा को राजी करने के लिए वे डावडियाँ तक पेश किया करते थे। गाँव के ठाकुर ने राजा की आज्ञा पर चौधरी पुरखाराम को यह हुक्म दिया कि वह अपने गाँव से बीस-पच्चीस जवान फौज में भर्ती होने के लिए दें। चौधरी कुछ देर तक सोचता रहा, इसके बाद मुँह उतारता हुआ बोला—"मैं ऐसा काम नहीं कर सकूँगा। गाँव का कोई किसान अपनी खेती को छोड़कर मौत के मुँह में नहीं जायेगा।"

ठाकुर को यह कोरा उत्तर अच्छा नहीं लगा। लेकिन वह जानता था कि चौधरी पढ़ा-लिखा है। शहर आता-जाता है। शहर में खद्दरधारियों के भाषण भी सुनता है। कहता है कि गाँधी बाबा

सबको सिखाता है कि अंग्रेजों के हम दास नही रहेंगे । ठाकुर को उस शब्द को बोलने में बड़ी कठिनाई होती, सुतन्तरता । एक रोज ठाकुर ने सहमते-सहमते चौधरी से पूछा—"चौधरी, यह सुतन्तरता क्या होती है ?"

"मैं क्या जानूं, ठाकुर ! लेकिन सार मैं कुछ-कुछ जरूर समझता हूं कि आदमी को किसी का गुलाम बनकर नही रहना चाहिए ।"

ठाकुर को इससे बड़ी रीस आई । आज तक गाँव भर मे कोई भी ठाकुर को इस तरह रूखा जवाब नही दे सका था । ठाकुर प्रभु का अंश है, गाँव का अन्नदाता है, माई-बाप है । फिर भला उसके सामने सरलता का, शिष्टता का त्याग करना महापाप न हो तो और क्या हो ?

आज फिर ठाकुर को चौधरी पर रीस आई । क्रोध से मुँह फेरता हुआ ठाकुर होले से गरजा, "चौधरी, सीधे मुँह बात करनी भी नही आती है, तुझे ।"

"क्यों, ठाकुर ? मैंने कोई बुरी बात तो नही कही ।"

"फिर भी, तुझे जरा सोचकर बात करनी चाहिये कि हम ठाकुर हैं, अन्नदाता हैं ।" ठाकुर ने मूँछों पर ताव दिया ।

"जानता हूँ, ठाकुरसा ! लेकिन मैं दो हरफ पढ़कर यह भी जान गया हूँ कि अन्नदाता और किसान का रिश्ता बहुत ही पवित्र होता है । पर आज तक ठाकुर, किसानों को लूटता आया है और किसान लुटता जा रहा है । ठाकुरसा ! गाँव भर में मैं खुश क्यों हूँ, इसलिए मैं इतना जानता हूँ कि साहूकार और आप अपनी बहियो मे क्या लिखते है ?"

ठाकुर चौधरी पर झल्ला पड़ा—"उपदेश मत दो, मैं जो पूछता हूँ, उसका जवाब दो, मुझे तेरे गाँव से बीस रंगरूट चाहिए, मोटे-तगड़े, हट्टे-कट्टे । मैं चाहता हूँ कि यह काम करके तू भी बीस-तीस

रुपये कमा लेगा आखिर है तो तू अपने गाँव का चौधरी ही।"

चौधरी का स्वर बिलकुल रूखा हो गया, "अरे ठाकुरसा, मैं आप की कमाई नहीं रखूँगा, कौन खाने वाला बैठा है ? इतने सा कुल (कुटुम्ब) में एक ही तो छोरी है। उसके लिए भगवान ने दिया बहुत है।"

"तेरी मर्जी, मैं तो भर्ती करूँगा ही।"

"और कोई नहीं होगा तो ?"

ठाकुर विहँस पड़ा—"कौन नहीं होगा ? जो मेरे गाँव में रहेगा उसे मेरा हुक्म मानना ही पड़ेगा।"

चौधरी अनमना-सा चला आया।

इसके बाद ठाकुर ने अपने गाँवों के सबसे तगड़े बीस नौजवान को बुलाकर फौज में भर्ती होने को कहा। उनमें से आधे तो इसलिए तैयार हो गये क्योंकि वे राजपूत थे। राजपूतों के लिए युद्ध में जाना गौरव की बात थी और तीन को अनिच्छापूर्वक ही 'हाँ' करनी पड़ी क्योंकि वे बेचारे दरोगे थे। ठाकुर के दहेज में आये गोले। शेष सात जो किसान थे, उन्होंने ठाकुर से हाथ जोड़कर कह दिया कि वे फौज में भर्ती नहीं होंगे। उनके लिए बहुत काम-धन्धा है। उनके अपने खेत है और खेतों के होते वे लड़ाई में नहीं जा सकते।"

ठाकुर को इन बेहूदों पर गुस्सा आ गया। वह कड़ककर बोला—"चुप रहो ! मैं सबको गोली से उड़ा दूँगा। कौन नहीं जायेगा, जरा मेरे सामने सीना तानकर आये। सूरसिंह ! जरा मेरी दुनाली ला। आज ये दो कौड़ी के जट्टू (मूर्ख) धरती के राजा का हुक्म नहीं मान रहे हैं। साले चमार कहीं के।"

"ठाकुर सा !" भीटिया का बाप लाधूराम पूरे जोश में भर उठा, "जबान सम्भालिए। आप हमारे अन्नदाता हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि आप हमारे बाप-माँ खेती करने लगे। हमारी मर्जी, हम नहीं

जायेंगे । लड़ाई का क्या भरोसा, कब किसके गोली लग जाय और कब कौन मर जाये ? हम अपने बाल-बच्चों को छोड़कर नहीं जा सकते ।"

ठाकुर के मन में उसी दम विचार आया कि इस हरामजादे कुत्ते को गोली मार दे लेकिन वह नरेश के सामने अब आतंकवादी बनना नहीं चाहता था उसने धैर्य से काम लेना ही ठीक समझा । उसने कहा कि जो आदमी हमारा हुक्म मानने को तैयार नहीं है, कल वह अपना खेत व घर छोड़ दें । हम लगान न देने के एवज में सबको कुड़क करेंगे और उधर राजा जी के यहाँ एक आदमी को दौड़ा दिया कि हमारे बीस आदमी तैयार हैं ।

रात को उसकी बड़ी बहन ने उसको घर वालों के सामने भाई से पूछा—"आपने लाधू को गोली क्यों नहीं मारी ?"

"मार देता, लालकुंवर, लेकिन अभी हम लोगों (जागीरदारों) ने राजाजी के खिलाफ जो उपद्रव मचाया था, उसका फल तो आप देख ही चुकी हैं । मैं हुक्मसिंह के कहने पर राजाजी के विरुद्ध नहीं होता तो अब तक राजाजी को राजी करके पाँच-दस गाँव का मालिक और हो जाता । अच्छा हुआ कि हुक्मसिंह राजाजी की नजर कैद में है। अब जो मैं फौज में भर्ती भेज रहा हूँ, महज इस कारण कि राजाजी के सामने अपना रुतबा जमा रहे और हमारी सेवाओं से प्रसन्न होकर वे हम पर कृपा बनायें रखें ।"

लालकुंवर अपने भाई की इस सूझ पर कृत्य-कृत्य हो गई । वह मन-ही-मन विचारने लगी—"यदि भाईसा का रुतबा बढ़ गया तो कहीं-न-कहीं हमारे भी हाथ पीले हो जायेंगे ।" पर उसकी छोटी बहिन कृष्णकुंवर जो चार ही वर्ष की थी, किंकर्तव्य विमूढ़-सी बैठी सबकी बातें सुनती रही ।

लालकुंवर के चेहरे की प्रसन्नता को उनकी भौजाई ने पहचान

लिया । जब वह पलंग से चली गई तब ठाकुर सा के पाँवों
दबाती हुई सहमी-सहमी बोली—"अन्नदाता ! अब बाईसान्
बाई सा के लिए कोई छोरा खोज ही लें । पहले से ही उमरा
आव तेज था और इधर तो बड़ी अजीब हो रही है ।"

'कैसे खोजूं, ठकुरानी जी ? आप नहीं जानतीं कि बराबर का
ठिकानेदार कई गाँव तथा कई हजार नकद माँगते हैं; कहाँ से ला
जाय इतना रुपया ? यदि मैं किसानों की चमड़ी उधेड़-उधेड़ कर बे
भी दूँ, फिर भी अपना काम पार पड़ता नहीं दीखता ।"

"लेकिन अब बाई सा एकदम मोटयार (जवान) दीखती है ।

ठाकुर ने तनिक झल्लाकर कहा—"अच्छा, जो होना सो हो
ही रहेगा, जाइये, थोड़ी कुसुम्बो (ठाकुर व राजस्थान के साम
अफीम को घोल-घोल बनाये जाते पेय पदार्थ को कुसुम्बा कहते हैं
भंवरकी के सागे (साथ) भिजवा दीजिये ।"

ठकुरानी उठकर चली गई ।

ठाकुर ने ठकुरानी को डाँट दिया पर उसका हृदय किसी दुः
से तिलमिलाने लगा । उसके आगे अपनी बड़ी बहिन का चाँद-सा मु
घूमने लगा । गोरी-सलोनी उसकी बहिन अपनी भाभी को देखक
क्या-क्या सोचती होगी ? सोचती होगी—"भाई-सा अपना जीवन-सुख
लूट रहे हैं और वह यौवन में कुंवारेपन की आग में जल रही है
ऐसा क्यों ? केवल इसलिए ही, कि वह गरीब है, उसके पास मौ
ठाकुरों के मुकाबले में अधिक गाँव और अधिक माल नहीं है ।"

ठाकुर के चेहरे पर पसीना दीये के प्रकाश में शबनम-सी बूँदों
सा जान पड़ा । बाकड़ली मूँछों का झुकाव कुछ ढीला-सा लगा ।
अंग की नस-नस ठंडी होती जान पड़ी । विचारों के तूफान ने जोर
का घुमाव खाया—"तो क्या मेरी लाडेसर (लाड़ली) बहिन आजीवन
कुंवारी रहेगी ?"

इस विचार मात्र से ठाकुर के हृदय मे पीड़ा का ज्वार उठा। पीड़ा का ज्वार भयंकर बनकर आँखो की राह बह चला जैसे वह बहुत दुःखी है।

"जीवन का यह कितना बडा अभिशाप है कि आदमी को केवल अपनी झूठी शान के पीछे, अपनी बहिन तक को कुंवारी रखना पड़ता है। कोई भी हमारे भीतर के खोखलेपन को नही समझता और ऊपरी चमक-दमक को हम छोड़ नही सकते। हे भगवान!"

ठाकुर ने अपने दोनो हाथो को मुँह पर फेरा। दुःख की आग मे जलकर वह सोच उठा, "इससे अच्छा है कि मैं इस गरीब बहिन का गला घोट दूँ। उसका बिना पंख के पक्षी की तरह तड़फना तो मिट जायेगा।" और ठाकुर की मुट्ठियाँ बँध गई।

× × ×

सवेरा हुआ। सूरज बादलों से निकला ही नही था कि गाव में एक फौज की टुकड़ी आ धमकी। संगीनों से लैस यह टुकडी बच्चों के लिए कौतूहल की चीज बन गई। स्त्रियाँ एक आँख दिखाने वाले घूँघट निकाल-निकाल अपने-अपने घर के आगे खड़ी हो गईं। आदमी आतक से कॉप उठे। इसी प्रकार की फौज एक दिन ठाकुर साहब को पकड़ने के लिए भी आई थी? लाधूराम की आँखें खुशी से चमक उठीं। उसने अपने पड़ोसी को लापरवाही से कहा, "हमे युद्ध में भेज रहा था। भाई! अब खुद जायेगा तो छट्ठी का दूध याद आ जायेगा।"

फौज की टुकडी के अफसर ने गोली चलाई। औरतों ने बाज की तरह झपटकर अपने बच्चों को अपने आँचलों मे छुपा लिया। भयभीत होकर एक-दूसरे को देखने लगी जैसे उनकी आँखें एक दूसरे से पूछ रही है कि क्या माजरा है?

फौज सीधी डेरे पर पहुँची जहाँ ठाकुर ने सिर झुकाकर अफसर का अभिवादन किया। अफसर ने हाथ मिलाकर 'डिसमिस' की आवाज

को जिससे फौज के सिपाही जो एक कतार में थे, सुस्ताने के लिए इधर-उधर बैठने लगे।

उनके लिये एक-एक गिलास दूध का प्रबन्ध किया गया और इस कार्य के लिए कुछ गाँव वालों को पकड़ कर उनसे बेगार ली गई खाना बनाने की।

दोपहर तक खाना बनता रहा। खाना खाने के बाद ठाकुर और अफसर हँसते हुए बाहर निकले। ठाकुर कह रहा था, "हमने आपको राजी कर दिया है और हमारी सेवाओं का फल आप हमें कृपा करके राजाजी से दिलवाइये।"

"क्यों नहीं, मैं आपको वचन देता हूँ।"

ठाकुर के चेहरे पर इस बात से चमक आ गई। लालकुँवर का कुँवारापन उसे मिटता हुआ जान पड़ा। उसे ऐसा महसूस हुआ कि जैसे राजाजी इन बीस जवाँमर्दों की आहुति लेकर उसे ऊँचा ओहदा दे देंगे। कई गाँव बख्श देंगे। तब वह अपनी बहिन का खूब धूमधाम से ब्याह करेगा बारातियों को पाँच-पाँच तोले की बनी अफीम घोल-घोल कर कुसूम्बो बनायेगा और एक-एक को पिलाकर गौरवान्वित होगा।

और ठाकुर ने अफसर से वचन ले लिया।

इसके बाद भूरसिंह को बुलाया गया। भूरसिंह हाथ जोड़कर विनीत स्वर में बोला, "हुक्म अन्नदाता।"

"जाओ, उन बीसों को तुरन्त बुला लाओ।"

पलक झपकते ही वहीं बीस नौजवान इकट्ठे हो गये। उन सात किसानों ने इस बात का डटकर विरोध किया कि वे कदापि युद्ध में नहीं जायेंगे। उन्हें नकद पैसों तथा खाकी कपड़ों का जरा भी लोभ नहीं है।

इस पर फौज के नालदार जूतों वाले आदमियों ने उन सातों

किसानों को घेर लिया और जबरदस्ती संगीनों के बल पर उन्हें चलने को बाध्य करने लगे।

उस समय लाघूराम की आँखों में आँसू भर उठे थे। वह चीखकर चिल्लाया था, "ठाकुर सा ! जिस प्रकार आपने हमे हमारी धरती माँ से अलग कर मौत के मुंह में फेंका हैं, उसी तरह भगवान भी आपको अपनी करनी का फल देगा।"

भीटिया उस समय चार वर्ष का था। वह अपनी माँ को रोता देख कर खुद जोर-जोर से रोने लगा था लेकिन वह उस समय यह भी नहीं समझ सका था कि वह क्यों रो रहा है ? पर आज वह इस क्यों का मतलब समझ गया है कि ठाकुर सा ने उसके बाप को युद्ध मे भेजा था जहा वह गोली का निशाना बन गया था।

इसके बाद गाव के साहूकार ने ठाकुर से मिलकर लाघूराम का खेत कुड़क करा लिया। चौधरी ने साहूकार को चेतावनी भी दी थी, "सेठ एक दिन सबको मरना है, उस वक्त परमात्मा के सामने क्या मुंह लेकर जायेगा। इस गरीब बेचारे छोकरे का खेत छीनकर उसे भूखो मत मार।"

पर साहूकार चिकना घडा ठहरा। यदि उस पर पानी ठहरे तो चौधरी की बात का असर हो।

चौधरी को गुस्सा आ गया। उसने कहा, "मैं भीटिये और उसकी विधवा माँ को पालूंगा, आधी खाऊँगा तो उसे भी आधी खिलाऊँगा और पूरी खाऊँगा तो उसे भी पूरी खिलाऊँगा।"

चौधरी ने अपनी कोमल बाहें फैलाकर भीटिये को अपनी गोद मे छुपा लिया। भीटिये की नन्ही-नन्ही आँखों से अनायास ही अश्रु छलक पड़े।

इसके बाद भीटिये की मा का जी वश मे नही रहा। किसान को अपनी जमीन से कितना प्यार होता है, यह यदि देखना था, तो भीटिये की माँ को देखना था। वह किसान और उसके जमीन से प्रेम की साक्षात प्रतिमूर्ति थी।

काली भयानक रातों में वह झीटिये को अपने जीवन से दूर रखते चुपचाप अपने खेत के पास चली जाती। उसकी मिट्टी खोदती, उसे सूंघती, उसे चन्दन की तरह अपने ललाट पर लगाती और फिर धान की बालों को चूमकर सिसक पड़ती थी जैसे वह मिट्टी ही उसके जीवन की सबसे बड़ी निधि हो।

धीरे-धीरे उसे बुखार रहने लगा। बुखार के साथ खाँसी और खाँसी के साथ खून लाल-सुर्ख टमाटर की तरह।

चौधरी झीटिये की माँ को अकसर समझाया करता था, "पाप की जड़ सदा हरी नहीं रहती। ठाकुर ने तुझे सताया है, भगवान उसे सतायेगा। तू जान-बूझकर मौत के मुंह में क्यों जाती है ?"

झीटिये की माँ चुप ही रहा करती थी।

एक रात भयानक वर्षा में वह अपने खेत को प्यार करने चली। बूंदें कह उठी, "रुकजा माँ, आज तेरी छाती पर झझावतों का ऐसा भयंकर प्रहार होगा जो कदाचित् तेरे व्यथित जीवन को ही नष्ट कर दे। पर माँ अपने खेत के पास पहुँच ही गई।

उसने बड़े स्नेह से अपने खेत की गीली मिट्टी को ललाट पर लगाया। उसे चूमा। बरसात मूसलाधार थी और रात डरावनी।

झीटिया की माँ अपने खेतों की बातों में उलझ गई। निर्जीव बालों ने भी अपनी कोमल बाहें उसकी ओर बढ़ा दी। इतनी ममता से उसने उन्हें अपने आँचल से चिपकाया कि ममता के अश्रु भी छलछला आये। उसकी वेदना पर बूंदें और अधिक जोर से हवा के झोंके का सहारा ले बरस पड़ीं जैसे उनका भी कलेजा फट पड़ा हो। वह विह्वल हो उठी। उसने बालों को अपनी सन्तान समझकर चूमा, एक बार नहीं, अनेक बार। उन्हें सहलाया। आकाश में गड़गड़ाहट के साथ बिजली चमकी। क्षणभर के लिये सारा खेत दीख पड़ा। हठात् उसके मुंह से निकल पड़ा, "यह मेरा खेत है, कितना चोखा और हरा है ?"

तब खाँसी की भयानक आवाज आई । दम घुटने लगा । उसने अपने दोनों हाथो से अपना कलेजा पकड़ लिया । उसकी आँखो में आतरिक पीड़ा के कारण दारुण व्यथा झलक पड़ी । उसने उस अन्धेरे में सतृष्ण आँखों से अपने चारों ओर ढूढते हुए धीमे स्वर में पुकारा, "झींटिया, अरे ओ झींटिया ! देख मेरी पसलियों में बड़ी पीड़ा हो रही है । ओह !" तब उसे जोर की खाँसी आई और खाँसी के साथ ही खून का फव्वारा छूट पड़ा । वह जमीन पर गिर गई । उसने अपनी मुट्ठी मे मिट्टी को भर लिया और जैसे-जैसे मुट्ठी ढीली होती गई वैसे-वैसे उसके मुंह से माँ-माँ का स्वर निकलता गया और वह स्वर क्रमशः टूटता हुआ हमेशा के लिये शात हो गया । झींटिये की माँ हमेशा के लिये धरती मां की गोद मे सो गई ।

सवेरे ही इस मौत का हल्ला सारे गांव में फैल गया ।

झींटिया अपनी माँ से चिपटकर रो रहा था । चौधरी उसे सात्वना दे रहा था । उसके बाद ढोलकी ने भी अपने नन्हें-नन्हें हाथों से झींटिये का हाथ पकड़कर कहा, "अब तू मेरे घर पर रहना ।" और वह भी झींटिये को रोता देखकर रोने लगी थी ।

दूसरे दिन ही ठाकुर के जवान लड़के को साँप ने डस लिया । काफी उपचार के बाद भी वह नहीं बचा । लोगो ने पीठ पीछे कहना शुरू किया, "यह अपनी करनी का फल है, भगवान के यहाँ थोड़ी देर जरूर है पर अन्धेर नहीं । ठाकुर को अपने पाप का फल मिल गया ।"

× × ×

काफी समय बीत गया था ।

झींटिया अब भी अपने खेत के आगे खड़ा था । एकाएक उसे ढोलकी की बात याद आई कि हम दोनों को जल्दी ही खेत पहुँचना है । आँसू पोछता हुआ वह चौधरी के खेत की ओर तेज कदम बढ़ाने लगा ।

× × ×

अपने जवान बेटे की साँप के काटे जाने के बाद ठाकुर का चित्त विक्षिप्त हो उठा। वह अपने बेटे की लाश पर गिरकर, उससे चिपट कर जोर-जोर से चिंघाड़ पड़ा, "सूरसिंह। रे, सूरसिंह। अरे! मुझे काला क्यों नहीं डस गया? अरे! तेरी मौत मुझे ही आ जाती, अरे! मैं मर जाता।" पर लोग सांत्वना के अलावा दे ही क्या सकते थे? उन्होंने उसे बहुत ही धैर्य बँधाया।

इस घटना के बाद ठाकुर के दिल में डर बस गया। उसे विचित्र सपने आते थे। वह प्रायः सुबह अपने कारिन्दों एवं ठकुरानी के सामने कहा करता था, "आज रात लाधूराम मेरे कमरे में घुस आया था। उसके पाँव उल्टे थे, उसके सिर पर सींग थे। उसके दाँत बड़े-बड़े थे राक्षस जैसे। वह अपने बड़े-बड़े नाखून वाले हाथ बढ़ाकर कहने लगा—"मैं तुम्हें ले जाऊँगा, मैं तुम्हें कच्चा चबा जाऊँगा।""और उसने अपने दोनों हाथों से मेरा गला दबोच लिया।" ठाकुर के ललाट पर पसीना चमक उठता था। आँखों में भय की गहरी रेखायें नाच उठती थीं।

लेकिन गाँव के साहूकार मोहनचन्द को यह सुनहरी मौका प्राप्त हुआ। उसने ठाकुर के पागलपन का बहुत ही सुन्दर फायदा उठाया। वह उसकी बड़ी बहिन लालकुँवर से मिला जो स्वभाव की बड़ी तेज व घमण्डी थी।

एक दिन मोहनचन्द ने लालकुँवर को हाथ जोड़कर विनती की, "यदि बाई-सा कहें तो कुछ अर्ज करूँ?"

"क्यों नहीं?"

"ठाकुर-सा की तबियत खराब हो जाने से गाँव की देख-रेख ठीक ढंग से नहीं हो रही है, लगान की वसूली नियम से न होने में किसानों के सिर चढ़ते जा रहे हैं, लाग-बाग भी ढंग से नहीं हो पा रही है, इस तरह काम-काज कैसे चलेगा?" साहूकार के स्वर में पूरी सहानुभूति थी, "यदि चौधरी ने इस कुप्रबन्ध की खबर नमक-मिर्च लगाकर राजाजी को कर दी, तो ठिकाने का पट्टा ही छिन जायेगा।"

लालकुंवर को साहूकार की बात में सचाई जान पड़ी। वह गम्भीरतापूर्वक कुछ देर सोचकर बोली—"बात तो पते की है, पर किया क्या जाय !"

भूखे को रोटी मिली। साहूकार फुदक कर बोला—"यदि आप चाहें तो लगान-वसूली का कार्य मैं कर लूं। आप मुझसे हर साल नियमित रकम ले लिया करें।"

"हाँ, मैं जरा सोचकर उत्तर दूंगी।"

"इसमें सोचने की क्या बात है? ठिकाने का रुतबा, आप सब का रुतबा है, मैं आपकी इज्जत में चार-चाँद लगा दूंगा और आपको जरा भी कष्ट नहीं होगा। बस, घर बैठे-बिठाये कलदार (नकद) मिलते रहेंगे।"

लालकुंवर का मन पाप में पड़ गया। बिना हाथ-पाँव हिलाये माल-पुआ मिलता रहे तो भला कौन नहीं खायेगा?

और उसने हाँ भर ली।

साहूकार एक माह तक भीगी बिल्ली बना रहा। वह किसानों से प्यार से बोलता, बड़े ही अच्छे ढंग से सलूक करता, उन्हें अपना सेवक बताता लेकिन फिर उसने अपना गिरगट वाला रंग बदलना शुरू किया। सबसे पहले उसने सभी किसानों को डेरे पर जमा करके लाग-बाग की बातें साफ की।

(1) वर्षा होते ही दो आदमी खेत की जुताई के लिए।

(2) धान पैदा हो जाने पर खेत में घास-फूस की सफाई के लिए दो आदमी देना।

(3) अन्न पक जाने पर चारा और अन्न देना—चौथाई रूप में और लगान अलग से।

(4) ठाकुर के घर वालों, दास-दासियों और पशुधन के लिए पानी का मुफ्त प्रबन्ध करना।

(5) गाँव का आधा पशुधन गाँव वालों का और आधा ठाकुर का।

(6) हुक्के की लाग पाँच रुपये।

(7) बाई के दूध पीने के कटोरे की लाग पाँच रुपये।

(8) धुएँ की लाग पाँच रुपये।

इस घोषणा से सारे किसानों में हलचल मच गई। सभी लोगों ने मन-ही-मन साहूकार को गालियाँ दी और उसके सर्वनाश की कामना की। चौधरी ने बोलने के लिए जरा जबान खोलनी चाही पर उसे गाँव के कारिन्दों ने डाँट पिला दी। चौधरी का विद्रोह लठैतों को देखकर शान्त हो गया?

इसके बाद जिस किसी ने जरा भी लगान देने में ढील की, उसका खेत कुड़क कर लिया गया। धीरे-धीरे साहूकार का ठाकुर के नाम का शोषण व अत्याचार पराकाष्ठा को पहुँच रहा था।

इस प्रकार ठाकुर के पागलपन की आड़ में साहूकार गाँव पर जोर-जुल्म करता जा रहा था।

× × ×

सोलह वर्ष बीत गये।

लालकुँवर का यौवन प्रदीप कुँवारेपन के कारण बुझ गया था। अब वह बेचारी बूढ़ी भी दीखने लगी थी लेकिन उसकी छोटी बहिन कृष्णकुँवर अपने भरपूर यौवन पर थी। प्रकृति भी कितनी नियमबद्ध है?

वह कुछ साल अपनी दूर के नाते की बुआ के वहाँ शहर भी रहकर आई थी, जिसने उसे काफी सुशिक्षित और सहृदय बना दिया था, पर वह भी साहूकार के आतंक से पीड़ित थी, डेरे की चहार-दीवारी में घुट रही थी। उसकी भावनायें मृगछौने की तरह स्वच्छन्द कुलाँचे भरना चाहती थी पर डेरे की दीवारें आन और शान उसकी स्वच्छन्द भावनाओं पर अंकुश लगा रही थीं। उसका अन्तर अपनी ही ज्वाला में दग्ध हो रहा था।

: ४ :

हरखा ने दूध का गिलास मास्टर के हाथ में देते हुए कहा—"माटर जी ! ठाकुर-सा की छोटी कुंवरी-सा ने आपको डेरे पर बुलाया है ?"

"मुझे, क्यों ?" मास्टर की भवें विस्मय से किंचित तन गई।

हरखा ने इस तरह कहा जैसे कुछ जानती ही नहीं—"मैं क्या जानू ? मुझे तो उन्होने कहा था, वे आपके दर्शन करना चाहती हैं।"

"मेरे दर्शन ? हरखा ! जाकर उन्हें कह दे, मास्टर के दर्शन करने से कोई लाभ नहीं, यह न देवता है, और न ही सिद्ध; किसी मन्दिर मे जाकर आप देवता की पूजा कीजिये वे जरूर आपके मन की साधें पूरी करेंगे।" मास्टर के होठों पर हल्की हँसी थी।

"नहीं, उन्होंने कहा है, कि मेरी ओर से विनती करके माटरजी से कहना कि कृष्णकुंवर आपसे चद घडी बात-चीत करना चाहती है।"

"हूँ ! फिर सुन, जब खाना पकाकर जाओ, तो कृष्णकुंवर देवी को कह देना कि मास्टर पाँच-छः बजे के बीच आयेंगे।"

हरखा की आंखो में प्रसन्नता नाच उठी। फिर सँभलती हुई बोली-"माटरजी, वह बड़ी ही फूटरी (सुन्दर) है, शहर भी रहकर आई है।"

मास्टर ने बेपरवाही से उत्तर दिया—"तो क्या हुआ, मैं क्या गांव से आया हूँ ? तू घबरा मत, समझी।"

हरखा अपने काम मे जुट गई।

इधर कई दिनों से मास्टर की प्रवृत्ति में बड़ा अन्तर आ गया था। छिछले प्रेम की क्षणिक छाया के पीछे न भागकर अब वह गांव

में शिक्षा का नया सूरज उगाने का प्रयास कर रहा था। छोटे-छोटे बच्चे अब पढ़ने मे रुचि लेने लगे थे। बड़ों को पढ़ने से चिढ़ थी लेकिन भीटिया इस ओर काफी प्रयत्नशील था। वह मास्टर की सभी कहानी-किस्सों की पुस्तकें पढ़ने लगा था, प्रीत क्या होती है, वह … तरह समझने लगा था ?

ढोलकी के मन की बात अब उसके हृदय में फूल की सुगन्ध की तरह बस गई थी कि ढोलकी उसे चाहती है, प्रेम करती है। लेकिन अभी भी वह ढोलकी के सामने जान-बूझकर गाँव का भोला-भाला छोकरा ही बना रहता था। वही बच्चों-सा झगड़ा, वही बच्चों-सी नादानी, वही रूठना और वही अजानी-सा प्रीत की बातें ही ढोलकी से किया करता था।

खेत से लौटते हुए भीटिया मास्टर के यहाँ निश्चित रूप से ठहरता था। हरखा उसे अवसर खाना बनाती हुई मिलती थी। उसके जीवन-क्रम में जरा भी अन्तर नहीं आया था। बस, काम करना और पेट भरना; पर एक बात थी कि मास्टर के प्रति उसके हृदय मे असीम श्रद्धा थी।

आज भी भीटिया खेत से लौटते समय मास्टर के यहाँ आया। उसके चेहरे पर इतनी खुशी थी जितनी खुशी एक राजा को अपने खोये हुए राज्य के मिल जाने पर होती है।

आते ही बोला—'मास्टरजी ! आज साहूकार को लकवा मार गया है, मरने की दशा में पहुँच चुका है, न बोल सकता है, और न उठ सकता है।"

"मर जायेगा, तो जमीन का पाप कुछ कम हो जायेगा।"

"जायेगा नही, ।" भीटिया ने निश्चयात्मक स्वर मे कहा—"इसने गाँव वालों का खून चूस-चूमकर अपना पेट फुलाया है, अब की पेट फूट कर ही रहेगा।" उसके स्वर में क्रमश: आक्रोश उत्पन्न होता गया।

इतने में हरखा भी आ गई। वह बात में हिस्सा लेने लगी।

"साहूकार मर जायेगा तो गाँव का कल्याण हो जायेगा।"

मास्टर ने हँसकर कहा, "लो, यह भी उसके कल्याण की कामना करने लगी। भाई! जब सभी ही उसके चिरायु की कामना करने लगे हैं, तब बेचारा रात भर ही निकाल दे, तो बहुत है!"

"मास्टरजी! मैं पहले चौधरी काका को यह खबर दे आऊँ। आज सवेरे ही वे ठाकुर सा की बेगार मे गये थे, इसलिये उन्होंने तड़के ही अपना खेत छोड़ दिया था। कितना अन्याय है, मास्टरजी कि अपने खेत का आधा काम छोड़कर भी हमें बेगार मे जाना पड़ता है?"

"इस बार मैं शहर जाऊँगा तो वहाँ की संस्था 'प्रजा परिषद' को इस जुल्म की सूचना दूँगा।"

"अब देने की जरूरत नही पड़ेगी। साहूकार तो सवेरे तक मसान घाट पहुँच ही जायेगा, फिर कौन लगान-वगान लेने आयेगा।" हरखा ने अपनी बुद्धिमानी का परिचय दिया।

मास्टर गम्भीर हो उठा, "हरखा! तू बड़ी नादान है। एक राजा मरने के बाद क्या दूसरा राजा नही आता? एक साहूकार मरेगा तो दस कारिन्दे या ठाकुर के चट्टे-बट्टे तैयार हो जायेंगे। अभी अकेले साहूकार की आज्ञा माननी पड़ती है, बाद मे दस की माननी पड़ेगी। अन्याय और अत्याचार इस तरह खत्म नहीं होता। उसको खत्म करने के लिए हमे उसकी खिलाफत करनी होगी। उसका मुकाबिला सगठन के साथ करना होगा। एक लड़ाई लड़नी पड़ेगी।"

"लड़ाई।"

"हाँ।"

"हम कैसे लड़ सकते हैं?"

"भीटिया, इस बार मैं तुम्हें शहर मे ले जाऊँगा। अब तुम अच्छे-खासे होशियार हो गये हो। केवल तुम्हें शहर की हवा और

उठ पगली, मेरे पाँवों को छोड़ दे।'' मास्टर का अन्तःकरण बरौ उठा। फिर धीरे-धीरे मास्टर के बोझिल पाँव आगे बढ़ गये।

हरखा की सिसकियाँ मास्टर के कानों में दूर तक आती रहीं। वे सिसकियाँ जिनमें अगाध ममता का उमड़ता हुआ सैलाब था।

मास्टर का मस्तिष्क भारी हो उठा। उसकी आँखों के आगे बहे सपने वाला दैत्य अपनी विकराल बाहें फैलाकर खड़ा हो गया। वह क्या करे? किस प्रकार इन नादानों को समझायें कि हरखा के साथ अन्याय मत करो। इस बेचारी के हाथ पीले कर दो। नहीं तो, कभी दुख में पागल होकर यह किसी कुएं में कूद पड़ेगी या रस्सी का फंदा बनाकर मौत का झूला झूल जायेगी।''

ठाकुर का डेरा आ चुका था। मास्टर अपने आपको सम्भाल कर द्वार की ओर बढ़ा। एक डावड़ी उसकी पहले से ही प्रतीक्षा कर रही थी। वह सीधी उसे कृष्णकुंवर के कमरे में ले गई। कमरे में जाने के पहले उसे लालकुंवर से आज्ञा लेनी पड़ी थी।

डेरा लाल पत्थरों का बना था। कहीं-कहीं बड़ी ईंटों से भी काम लिया गया था। डेरे के चारों ओर बहुत दूर तक काँटों की बाड़ थी।

कृष्णकुंवर का कमरा काफी साफ-सुथरा था। उसमें काच के बड़े-बड़े भाड़-फानूस थे और बड़ी-बड़ी तस्वीरें थीं। दोनों ओर दो बड़े-बड़े आदमकद शीशे थे, उसमें कृष्णकुंवर के सोने का पूरा चित्र दिखलाई पड़ता था। नीचे, नगर की जेल का बना गलीचा था और पलंग पर मखमली गद्दा। पलग के समीप ही एक आराम कुर्सी थी जिस पर मास्टर के बैठने का बन्दोबस्त किया गया था। कृष्णकुंवर ने केसरिया रंग का लहँगा वैसा ही कुर्ता, काँचली, केसरिया ही ओढ़ना पहन रखे थे और उन सबकी सुन्दरता पीले गुलाब के फूल की तरह खिला रहा था—कृष्णकुंवर का केसरिया रंग।

मास्टर ने जैसे ही कमरे में प्रवेश किया वैसे ही कृष्णा ने नम्रता से

हाथ जोड़कर नमस्कार किया। मास्टर ने भी नमस्कार का उत्तर उसी विनम्रता से दिया। कुर्सी पर बैठते ही मास्टर की नजर मनका पर पड़ी। वह यंत्रवत् लकड़ी के पंखे को खींच रही थी जो छत से टंगा हुआ था।

मास्टर ने मनका के बारे में पूछा तो कृष्णा ने बड़े ही संकोच से बताया कि यह उसकी डावडी (दासी) है। बचपन में जब वह बहुत ही गर्म मिजाज की थी, तो इसको दो-तीन बार इतने जोर से पीटा कि अब पंखा एक पल के लिये भी बन्द नहीं होता। वह नींद में भी पंखा चलाती रहती है।

मास्टर ने देखा कि कृष्णा की आँखें सहज मानवीय लज्जा से जमीन में धँसती जा रही हैं। उसे अपने अतीत के प्रति लज्जा है। उसने बात को खुलासा करते हुए बताया—"मैं बहुत उद्दंड थी। बात बात में ताव में आ जाती थी। इनके साथ क्रूरता का व्यवहार-बर्ताव किया करती थी, जैसा हमारे यहाँ होता है।" उसने एक लम्बी आह छोड़ी, 'फिर जब मैं शहर गई तो मनुष्यता क्या होती है, यह जाना ? लेकिन अब मनका पर मेरे कहने का कोई असर नहीं होता। इसे आज भी मुझसे उतना ही डर लगता है जितना पहले लगता था। यह मुझे उतना ही कठोर समझती है, जितनी कठोर मैं पहले थी। मेरे आँख बदलने के साथ यह रोने लगती है। बिल्कुल बुद्धू और दब्बू है।"

मास्टर की दया मनका पर जाग उठी। कितने भीषण आतंक में जी रही है यह।

वह रूखी हँसी हँसता हुआ बोला—"सदा की सजा और आपकी दुष्टता ने इस बेचारी के अचेतन मन में भय की सृष्टि कर दी। अब यह आदमी से यन्त्र बन गई।"

कृष्णा को यह बुरा जरूर लगा, लेकिन तत्काल वह सहिष्णु रही।

उसने जो गलतियां की है, उसका यही प्रायश्चित है कि वह पुरा
अपनी गलती को महसूस करे। झूठी शान के मद में उसी क
बहिन का आजीवन कुंवारा रह जाना, उसके लिए कितना क
पीड़ादायक था? शिक्षा के साथ-साथ उसके विवेक ने जो प
अपनाया, उसमें उस अहम् का स्थान मिट रहा था जो मनुष्य
भीतर-ही-भीतर क्षय रोग की तरह खोखला कर देता है।

कृष्णा ने धरती पर अपनी नजरें गाड़ दी, 'मैं मानती हूँ,
हमारी दुष्टता ने ही इस बेचारी को इतना डरपोक बना दिया है
वह रुककर बोली—"असल में बात यह है कि मनुष्य अपनी रूढ़ि
को जल्दी से छोड़ नही सकता। हम पर रूढ़ियों शासन करती
जिस वातावरण में मेरा पालन-पोषण हुआ, जो मैंने अपनी आँखों
देखा, उसके संस्कार मेरी खोपडी में घर करते गए और मैं वैसी
बनती गई, जैसी मेरी माँ या अन्य घरवालियां है।"

"आदमी की क्रूरता एवं पशुता का नंगा रूप कदाचित् इ
सत्ताधारियों के खाले मे पाया जाता है?' मास्टर के स्वर में स
आक्षेप था।

"मैं भी मानती हूँ, लेकिन मैं अपनी दया का खुलकर उपय
भी नहीं कर सकती। ऐसा करती हूँ तो एक गृह-दाह लग जाती
उस गृह-दाह में मैं अपनी मानसिक शान्ति खो बैठती हूँ। इसलिए मु
अपनी मानसिक शांति को बनाये रखने के लिए थोड़ा-बहुत अकड़ब
बनना ही पड़ता है ताकि मेरे घर वाले यह समझें कि मैं पूर्वजों
परम्परा को त्याग नहीं रही हूँ।

मास्टर को कृष्णा की बातो से कुछ सन्तोष प्राप्त हुआ। उ
महसूस हुआ कि इस युवती में जीवन के प्रति सही ढंग से सोच
की शक्ति आ रही है। कई बातें हुई। मास्टर ने भिन्न-भिन्न प्रश
किये जिनका उत्तर कृष्णा ने बड़े ही सुन्दर ढंग से दिया। मास्ट
उसके ज्ञान से प्रभावित हुआ।

इस गाँव में मास्टर को एक यही ऐसी युवती मिली जिससे वह गम्भीरता पूर्वक किसी भी समस्या पर विचार-विवेचन कर सकता था। उसकी दृष्टि कृष्णा के चेहरे पर कुछ देर तक रुकी रही। फिर वह तैयार होता हुआ बोला—"शहरों में जो जन-जागृति हो रही है, उसके बारे में आपका क्या ख्याल है?"

कृष्णा इस पर चुप हो गई। उसकी मुद्रा से ऐसा प्रतीत होता था जैसे उसे इसके बारे में बहुत ही कम ज्ञान है। उसने अपनी गर्दन नीची कर ली, "दरअसल मास्टरजी, मुझे इन गम्भीर समस्याओं का अध्ययन जरा भी नहीं है। लेकिन सन् 32 के उस आन्दोलन के समय मैं बीकानेर में थी। मैं यह कह सकती हूँ कि राज-द्रोहियों ने राज्य के विरुद्ध कुछ किया जरूर था अन्यथा महाराजाधिराज इतने कठोर नहीं होते?"

मास्टर ने कृष्णा को खुलासा व सही स्थिति बताते हुए कहा, "आप भी ऐसी बातें करती है जैसी छोटी-सी बच्ची, केवल जनता में चेतना भरने के लिए चन्द पर्चे वितरण कर देने से ही राजद्रोह जैसा संगीन जुर्म बन सकता है तो और बात है। जरा गौर कीजिये, चुरू में स्वामी गोपालदासजी द्वारा जो जागृति करने हेतु दिया गया भाषण क्या राजद्रोह का बाना पहन सकता है? किसी अखबार में समाचार भेज देना भी क्या राजद्रोह का अपराध हो सकता है? नहीं, तो उस शहर के राजाओं की निरंकुशता पौराणिक दैत्यों से कम नहीं हो सकती।" क्रोध की रेखायें मास्टर के चेहरे पर नाच उठीं। जब उसका क्रोध शांत हुआ तो कृष्णा ने मास्टर के चेहरे पर अलौकिक आभा के दर्शन किये। वह श्रद्धा से मन-ही-मन झुक गई, अवश्य ही यह मानव जरा अलग किस्म का है।"

"मास्टरजी, तो राजाओं का भविष्य क्या है?" उसने नया प्रश्न किया।

"जन जागृति के साथ यदि ये नहीं बदले तो एक दिन "
पर से राजा नाम का कोई व्यक्ति रहेगा ही नहीं।"

कृष्णा को मास्टर के शब्दों में सत्य का आभास हुआ। उसे
बात को बदला, "आजकल भीटिया कहाँ रहता है ?"

"चौधरी के यहाँ !"

'क्या करता है ?'

"खेती का काम, और मेरे पास पढता है। अब मैं जल्दी
यह गाँव छोडकर चला जाऊँगा। मेरे साथ भीटिया भी चलेगा
उसे शहर देखने का बड़ा शौक है।"

"आप गाँव छोडकर चले जायेगे, क्यों मास्टर जी ?'

"शहर में जाकर कुछ काम करूँगा। सच यह है, कृष्णा
कि मेरे पीछे कोई रोने-धोने वाला नही है। अतः अपने जीवन
क्यों व्यर्थ खत्म होने दूँ ? शहर मे जाकर प्रजा-परिषद में क
करूँगा। हाँ, इस गाँव मे आने का भी एक कारण था, कुछ
रह कर सेहत ठीक करनी थी।"

"लेकिन मैं कहती हूँ कि शहर मत जाइए।" उसके स्वर
आग्रह था, "और यदि आप जाये तो भीटिये को साथ मत ले जाइये

"इसमें एक नौजवान का भरपूर जोश है, तेज बुद्धि है सा
चला चलेगा तो आदमी बन जायेगा।"

कृष्णा क्यो उदास हो गई, यह मास्टर नही जान सका। व
रुकती-रुकती बोली, 'यह भीटिया है न, बड़ा ही उद्दंड है। जब
छोटी थकी (बच्ची-सी) थी। तब एक बार मैं घोड़े पर चढ़कर गां
के खेतों में घूम रही थी। रास्ते में भीटिया महाराज सोए मिल गये
मैंने गुस्से में घोड़े से उतर कर उसके सिर पर थप्पड़ मार दिया
उसने भी घाव देखा न ताव, पास पड़े एक कंकर को उठाकर मे
सिर पर दे मारा। मेरे ललाट पर एक गूमड़ा (सूजन) हो गया

मेरे रोम-रोम में आग-सी लग गई। पर न जाने क्यों मैंने अपने घर उसकी शिकायत नहीं की? करती तो उसके हाथ को तोड़ दिया जाता पर मैंने ऐसा नही किया। शायद मैं उससे सम्बन्ध बनाये रखना चाहती थी। पर भीटिया मुझसे कभी भी सीधे मुँह बात नही करता था। मैं उसे मनाती थी, धमकी देती थी, डाँटती थी, लेकिन वह घृणा से इतना ही कहा करता था कि मैं तुमसे नही बोलूँगा, तेरे बाप ने मेरी माँ को मारा, मेरे बाप को मारा, बड़ा होकर मैं भी तेरे माँ-बाप को मारूँगा। बड़ा ही विद्रोही है मास्टर जी? अब कैसा है?''

मास्टर कृष्णा की आँखों की उत्सुकता को तुरन्त भाँप गया। वह मुस्कराता हुआ बोला—'है तो वैसा ही जोशीला, फर्क इतना है कि पहले के जोश में बचपन था और अभी के जोश में शान। अच्छा, अब मैं चला।''

"दूध का गिलास मंगवाऊँ?"

"नहीं।"

"क्यों मास्टर जी?"

"इच्छा नही है।"

"आपको देखने की बड़ी मनसा (इच्छा) थी।"

"अब तो पूरी हो गई, मेरे ख्याल में अब तो आपका कल्याण हो जायेगा।"

दोनों हँस पड़े।

मास्टर के चले जाने के बाद कृष्णा के आगे भीटियां का चेहरा बहुत देर तक घूमता रहा।

: ५ :

साँझ का सूरज क्षितिज का अन्तिम स्पर्श करता हुआ अस्त हो चुका था। एक मटमैली चादर सारे गाँव पर छा चुकी थी। घरों का उठता धुआँ गाँव के वातावरण को घुटा रहा था।

ढोलकी आज बड़ी आकुलता से झौंटिया की प्रतीक्षा कर रही थी। गायों को दाना-पानी देने से लेकर दुहने तक का काम उसने अकेले ही समाप्त कर लिया था ताकि वह झौंटिया के आते ही निश्चिन्त होकर बात-चीत करे। वह उसकी झोंपड़ी के आगे बिछी सूखी घास पर लेट गई। उसके मुँह में घास के दो-तीन तिनके थे।

लेकिन झौंटिया आज गम्भीर था। मास्टर के साथ शहर जाने की उसने जो उत्सुकता प्रकट की थी और जल्दबाजी के कारण उसने जो 'हाँ' भर ली थी उससे वह चिन्तित हो उठा। इस गाँव की मिट्टी में झौंटिया का बचपन, उसकी मधुर यादें, उसकी उद्दण्डता तथा उसका प्रेम छिपा हुआ था। इस गाँव की हवा में झौंटिया का स्वाभिमान एवं अकड़ गूंजा करती थी, तभी उसने कभी भी कृष्णा से सीधे मुँह बात तक नहीं की।

स्मृति जैसे झौंटिया के हृदय-पटल पर चित्रपट की तरह पूरे प्रकाश के साथ घूम गई। एक बार कृष्णा ने शहद से मीठे स्वर में कहा था, "झौंटिया ! तू मुझे बहुत ही चोखा लगता है।" झौंटिया का दुखित हृदय तड़फ उठा, "तू मुझे आँख-डीठों भी (आँख को भी) नहीं सुहाती है।"

"फिर तुझे कौन चोखी लगती है ?"

"ढोलकी।"

"मैं ठाकुर की बेटी हूँ झौंटिया, मुझसे सुन्दर ढोलकी को कहा तो मैं अपने आदमियों से तेरी खाल खिचवा लूंगी।"

"रांड से बत्ती कोई गाल नहीं है। जा, खाल खिंचवा दे यदि तुझमें दम है तो ?" और भीटिया अकड़कर चलता बना।

पर भीटिया अवसर देखा करता था कि कृष्णा घर जाकर कभी भी उसकी शिकायत नहीं करती है। न जाने क्यों।

पर भीटिया आज समझ रहा है कि कृष्णा की वह लाचारी उसके बनावटी जीवन की वास्तविकता थी। घुटते हुए विपाक्त सामन्ती-जीवन की वह स्नेह-सिंचित ज्योति थी, जहाँ जीवन सच्चा रूप लेकर जलता है।

उसने अपने घर में पाँव रखा। चारों ओर देखा—"ढोलकी, अरी ओ ढोलकी !"

ढोलकी बहुत देर से उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। भीटिया की आवाज सुनते ही वह उसकी ओर भागी। उसके भागने की गति से स्पष्ट मालूम होता था कि वह भीटिया के लिए बड़ी व्याकुल है, पर वह उसके सामने जाकर एकदम ठिठक गई, जैसे किसी ने तेज भागती हुई गाड़ी के ब्रेक लगा दिये हों। भीटिया असमंजस में पड़ गया। उसने देखा कि ढोलकी ने घूंघट भी निकाल लिया है।

खुशी और आश्चर्य-मिश्रित जो मुस्कान भीटिया के होंठों पर नाची, वह सहज मानवीय हृदय से ओत-प्रोत थी। वह उसका हाथ पकड़ बैठा, "क्या बात है ढोलकी, अरे तू बोलती क्यों नहीं ?"

ढोलकी ने अपना घूंघट और खींच लिया।

"अरे ! हो क्या गया है तुझे ?"

"...............।" वह चुप रही।

"अच्छा, तू नहीं बोलती है, तो, ले मैं चला।" भीटिया वापस द्वार की ओर मुड़ा।

अब ढोलकी से रहा न गया। उचककर उसने भीटिया का हाथ पकड़ लिया, "कहाँ जाता है ?" ढोलकी का घूंघट हट गया।

"खेत।"

"क्यूं ?"

"तू गज भर का घूँटा निकाल कर बैठ गई है, फिर मैं किससे बातें करके अपना वक्त बिताऊँगा ?"

"अब ?" चाँद फिर बादलों में छिपने लगा।

"अब कौन से तेरे हीरे-मोती लग गये हैं ?" झीटिया के स्वर में उपहास था।

"काका तेरी और मेरी ''।" वह खिलखिलाकर हँसती हुई घर के भीतर अदृश्य हो गई।

झीटिया घर में घुसा।

खाना परोसते हुए चौधरी ने आत्मीयता से कहा-' बेटा ! मैंने ठाना है कि तेरा और ढोलकी का ब्याह अगले वैशाख के सावे (मुहूर्त) में कर दूँ।"

झीटिया बिल्कुल चुप रहा।

"तू जानता है कि बेटी राजा रावण के घर में भी नहीं समाई, फिर भला हम लोगों की क्या बिसात है ? फिर मेरे तो कोई दूसरा छोरा है नहीं, इस वास्ते मैं तो बेटी देकर बेटा लूँगा।" चौधरी का स्वर आर्द्र हो उठा, "बेटा ! ढोलकी के लिए तुझसे चोखा वर कौन होगा ? दोनों की जुगल-जोड़ी राधा-किशन की-सी लगेगी।"

झीटिया की आंखों में चौधरी के बड़े-बड़े अहसान आँसू बनकर गालों पर चमक उठे। यह व्यक्ति है या देवता, वह नहीं समझ सका।

"झीटू, तू रोता क्यों है ?"

"रोता नहीं, शर्माता है।" पहली बार झीटिया ने ढोलकी की माँ के स्वर में प्रेम देखा।

'काका ! तेरे अहसान से तो मैं मरा जा रहा हूँ, इस पर''''।"

"नहीं झीटू, मैं तो ढोलकी का सुख खोज रहा हूँ। वह सुख तेरे कन्ने रहने से ही होगा।"

झीटिया ने भावुकतावश चौधरी के पाँव पकड़ लिए, "आप मिनख

ों है, देवता है, देवता ।"

बाद में भीटिया के लिए भी निवाला उगलना कठिन हो गया। ! उठा, "काका ! मैं अगले सप्ताह शहर जा रहा हूँ ।"

"किसके संग ?"

"मास्टरजी के ।"

"जरूर जाओ, इसकी संगत से आदमी बन जाओगे । तुझे नहीं लूप, काले कन्ने गोरा बैठा, रंग नहीं बदले तो अकल जरूर दल जावे ।"

भीटिया हँस पड़ा ।

झोंपड़ी के आगे ढोलकी खड़ी थी । भीटिया को देखते ही पीछे ने ओर छिप गई । भीटिया एक बार फिर मुस्करा पड़ा ।

: ६ :

लालकुँवर की क्रूरता हद से बाहर होती जा रही थी । अपने यौवन की अतृप्ति से पीड़ित वह नारी अपने जीवन-उद्देश्य को मान- ।य परम्परा से विमुख करके एक क्रूर शासक का रूप दे रही थी । ास-दासियों पर नंगा अत्याचार, किसानों का साहूकार के साजे मे ोषण शोषण । कृष्णा पर बेजा आधिपत्य की भावना, पैदा हो गयी ै । जैसे वह चाहती थी कि उसकी आज्ञा के बिना यहाँ का ्ता भी न हिले ।

अपने जीवन की अतृप्तियों की प्रतिक्रियायें विचित्ररूपमें प्रकट हो रही । कभी-कभी वह यहाँ तक सोच लेती थी कि गाँव के जितने भी सम्पत्ति है, उनके जीवन में द्वेषता, घृणा और मन-मुटाव की

लालकुँवर बाईसा को बना दिया है । अब बेचारी कृष्णकुँवर !
तनिक रुककर वह बोली, "बड़े खोटे भाग्य लेकर जन्मी है । न
वर और न चोखा घर और यदि ये दोनों मिल जाते हैं तो ग
अभाव में काम नहीं बनता था । अब भगवान ही रखवाला है।"

गर्मी से बचने के लिए कपड़े और लकड़ी का बना पंखा
भी चल रहा था और सारी रात मनका डावड़ी उसे च
ही रहेगी ।

मनका यत्रवत पंखा चला रही थी हालांकि कृष्णा उस समय
से बाहर निकल चुकी थी; पर उसके मन में जो भय बैठा हुआ
कि इस पंखे के पीछे उसने तीन-चार बार खूब मार खायी थी।
बाद उसके दिमाग में आतंक बैठ गया था। और वह उस पंखे
देखकर बावली-सी हो उठती थी । उसका रुकना जैसे उसको मौत
न्योता था, इसलिये वह उसे लगातार चलाती रहती थी ।

कृष्णकुंवर ने पुनः कमरे में पाँव रखते ही मनका को आज्ञा
"आज हम ऊपर वाली मेड़ी की छत पर सोयेंगे, आज हमारी त
यत अमूज (ऊब) रही है ।"

मनका ने इतना उत्तर दिया, "हुक्म बाई सा !"

बाद में वह मोचा, बिस्तरा, जल की झारी आदि लेकर उ
चल पड़ी ।

कृष्णकुँवर बिस्तरे पर सोई थी कि गाँव की कुछ लड़कियों
अपने शहद से मीठे स्वर में तीज का गीत शुरू किया ।

सावन का सुहावना महीना लग चुका था ।

थोड़ी-थोड़ी वर्षा के कारण प्रकृति-सुरम्य लगने लगी थी। घर
की छानी को चीरती जो मुरुट फूटीं उससे वह हरी-भरी लगने ल
थी । खेजड़ों का चाँदनी के प्रकाश में झूमना मन को मोह रहा था
कृष्णकुँवर की आँखें सारी प्रकृति पर होती हुई चाँद पर टि

गई । आज चांद मे उसे कलंक जान पड़ा । लेकिन उसे उसी चाँद के पास एक नया चाँद दिखा । यह चाँद भींटिया का चेहरा था, प्यारा, तब उसकी ध्यानमग्नता खेतों की बाड़ से टकराकर गूंजते हुए गीत मे जा मिली ।

गीत मे एक नवजवान बहू अपने परदेश जाते हुए पति को तीज खेलने के लिए प्रश्न कर रही है ;

*बागों बोली कोयली, आभे चमके बीज

थाद सिधासो चाकरी, म्हांने कुण रमासी तीज ।

कृष्णकुंवर के कानो मे पूरे दोहे का रस पड़ते ही उसने अपने नयन मूंद लिये । उसकी आँखो के सामने एक षोड़शी नई दुल्हिन का चेहरा नाच उठा जो अपने परदेश जाते हुए पति को मना रही है ।

कृष्णकुंवर भावों के उद्रेक में इतनी बह गई कि उसने अपने दोनों हाथों को अपनी छाती पर रख लिया और होले-होले काँपने-सी लगी।

मनका चित्रवत् खड़ी थी । कृष्णकुंवर को विचित्र मुद्रा मे देखकर उससे न रहा गया । बोल उठी, 'क्या बात है बाई सा ?"

"मनका !"

"हाँ ।"

"तेरी कोई भायली (सहेली) है जिसका ब्याह हो चुका है ?"

"हाँ, कई हैं ।"

"ब्याह के समय वे कैसी लगती थी ?"

"सच कहती हूँ बाई सा, उसके पग जमीन पर नही पड़ते थे । खुशी मे फूली नही समा रही थी ।"

कृष्णकुंवर ने एक लम्बी आह भरी ।

---

*बाग मे कोयल बोल रही और आकाश मे बिजली चमक रही है यदि आप नौकरी करने (परदेश) चले जायेंगे तो हमें तीज कौन खेलायेगा ?

गीत अब भी गूँज रहा था :
तीज रमण रो,
धण ने खेलण रो चाव,
ढोला जी हो.......
लोनी मजो है लोडी तीज रो
हो जी हो ढोला मारू
सावण पैली आयजो जी
म्हांरे भरिये भादूड़े री तीज
ढोला जी रे.......
लोनी मजो है लोड़ी तीज रो

कृष्णकुँवर का यौवन जैसे पुलक उठा हो इस गीत में। वह अंगड़ाई लेकर उठी और दीवार के सहारे हाथों का सम्बल लेकर खड़ी हो गई। अब उसे उन औरतों का झुंड साफ नजर आता था जो अपने तमाम जोर-शोर के साथ इस गीत को गाकर गाँव की उन औरतों को उस समय की मीठी-मीठी और पुलक-भरी याद दिला रही थी जब उनके पति परदेश जा रहे थे और वे उनसे सावन के मादक महीने मे लौट आने का कौल करा रही थीं।

कृष्णकुँवर ने मनका को अपने नजदीक घसीटते हुए बड़े स्नेह-संचित स्वर में पूछा, "मनका! यदि तेरा पति भी तुझे छोड़कर परदेश जाता, क्या तू उसे ऐसा ही कहती ?"

"तो मैं उसके पगों मे बेड़ियाँ डाल देती, जाने ही नहीं देती ? मैं इतनी सीधी नहीं हूँ।" मनका के स्वर में ऐसा मालूम होता था कि इन गुलामों के दुख भरे जीवन के ये क्षण नखलिस्तान के समान हैं।

"तू बड़ी बदमाश है, कहीं अपने मोट्यार से ऐसा सलूक किया जाता है ? इससे भगवान विराजी हो जाता है ? कृष्णकुँवर ने उपदेशात्मक शैली में कहा।

मनका ने तब झट से पूछा, "और आप" ?'

"मैं....।" कृष्णकुँवर कुछ देर तक चुप रही फिर सन्तप्त स्वर मे डाँटती हुई बोली, "तेरी जबान कतरनी की तरह खूब चलने लगी है। मैं जो पूछूं उसका जवाब दिया कर, अपनी ओर से सटर-मटर जवाब न दिया कर, समझी।"

मनका ने काँपते स्वर में कहा, "हाँ बाई सा।"

मनका चुप्पी लगाकर बैठ गई। चाँदनी के दुधिया प्रकाश मे बाई सा का उसने उतरा हुआ मुँह देखा।

गीत की अन्तिम पंक्तियां आकाश में गूँज रहीं थीं :

"हो जी ढोला मारू जी,
घोडी थे लाय जो कूदणी जी, कोई
चाबुक लीजो थारे हाथ
ढोला जी रे....
लोनी मजो है लोड़ी तीज रो।"

कृष्णकुँवर ने पल भर के लिए अपनी आँखें मूँद लीं। उसे ऐसा महसूस हुआ कि जैसे भींडिया उसका पति बना, घोड़े पर सवार होकर उसकी ड्योढ़ी के आगे खड़ा है और वह खुशी मे पागल हुई उसकी अगवानी के लिए दौड़ रही है। उसे यह भी ख्याल नहीं आ रहा था कि वह स्वयं दुल्हिन है।

लोग क्या कहेंगे ? उसकी सहेलियाँ क्या समझेंगी ? कहेंगी—

लोक-लज्जा का आवरण तोड़कर यह कामिनी अपने मानस-मन्दिर मे प्यार का उमड़ता हुआ तूफान लिये अपने देवता के सम्मुख जा रही है। इसकी अर्चना भी भक्ति के साथ-साथ श्रद्धा है। नारी का चरम रूप, श्रद्धा। अपने आराध्य के चरणो मे जीवन का महान समर्पण करने मे संसार का भय क्यो ? करने दो। अपनी विपुल महत्वकाँक्षाओं का महादान इसे।

कृष्णा का रोम-रोम पुलक उठा। वह विभोर-सी हो गई। कल्पना के क्षणिक सुख के वरदान ने उसे सुखी प्राणियो का सम्राट बना दिया।

सपने का आना मीठा होता है और टूटना बहुत ही पीड़ाजनक। मधुर कल्पना का अन्त दुख से भरा-पूरा होता है।

मस्तिष्क की चेतना ने उसे वस्तु-जगत के कठोर पत्थरो पर ला पटका। कठोर पत्थरो की तीखी चट्टानों की रगड़ मे उसके हृदय के तार-तार में पीड़ा का संचार हो उठा। पीडा के सचरण ने उसकी आँखो को तरल कर दिया और देखते-देखते उसकी आँखो से गगा-यमुना बह उठी। वह अपने मोचे पर औंधे मुह गिर पड़ी। सिसकियाँ सुन मनका का मन काँप उठा। वह कृष्णा के पाँव दाबने के लिए ज्योंही आगे बढी त्यो कृष्णा भडक उठी, "मैंने तुझे हजार बार कह दिया है कि तू मेरे पाँव मत छुआ कर, जा यहाँ से।"

"नीचे ?"

"नीचे नही तो क्या ऊपर जायेगी ?"

मनका नीचे उतर गई।

कुछ देर रोने के बाद कृष्णा स्वस्थ हुई। सबसे पहले उसके विचार अपनी बड़ी बहन की नीयत पर गये। उसका रूखा व्यवहार बोल उठा कि कृष्णा तेरी बहिन तुझे अपनी तरह आजीवन कुँवारी रखना चाहती है। जब उसने ससार का सुख नही देखा, तो फिर

म कैसे देख सकती हो ? सम्भल, उसकी बातों मे रहेगी तो अपना
रा-सा जीवन व्यर्थ ही गुमायेगी ।

कृष्णा के विचारों में दृढ़ता आने लगी । उसकी बदलती हुई
ाकृति भयंकर परिणाम से टकराने की सूचना दे रही थी ।

फिर वह बिस्तरे पर करवटें बदलने लगी ।

तब उसकी शान्त विचार-धाराएँ उसके मस्तिष्क मे उठने लगीं।
एक विचार मे कहा कि भीटिया जाट है और तू राठोड़। कैसे मेल
होगा।

कृष्णा के सामने राजपूताना की अमर प्रणय कथा नाच उठी ।
रेते के स्वर्णिम धोरों में आज भी इनकी अमरता बरस रही है कि
प्रेम जैसी महान पवित्रता के नाम पर रामू-चनणा मिट गये ।

रामू-चनणा !

एक सुथार और ठाकुर की बेटी !

कैसा अनहोता संयोग ?

पर प्रेम का सर्वोपरि है। उसकी विशालता में जाति-भेद गौण है।
प्रेमी की आत्मा में अपरिसीम सुख-दुख सम्मिलित है। जगत ही प्रेम-रस
मे डूबा जान पड़ता है। प्रेम के उन्माद मे प्राणी कहने लगता है, 'प्रेम
को पतित कहने वाले प्राणियो ! ध्यान से सुनो, प्रेम परमेश्वर है। अमर
है। वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का उद्‌गम है।"

कृष्णा ने निश्चय किया कि यदि प्रेम का रूप इतना व्यापक
है तो उसे भी प्रेम करने का पूरा हक है । उसे प्रेम की अनुभूति
की पीड़ा और मृत्यु का आमन्त्रण स्वीकार है ।

तब कृष्णा के सम्मुख लालकुंवर का सूखा मुंह हंस उठा ।
बेरूप व विडम्बना मिश्रित हंसी से कृष्णा का मन तिलमिला उठा ।
उसने अपने दोनों हाथो से अपना सिर पकड़ लिया । आँखें बन्द कर
ली और तकियो मे मुंह छिपा कर सिसक पड़ी ।

पुरवैया का झोंका सनसनाता हुआ उसके कानों के नजदीक से बहता हुआ गुजरा, "देखो पूरणा ! वंश-मर्यादा के बाहर रखा हुआ कदम बचकर नहीं रह सकता । वह कटकर ही रहेगा । अपने बच्चों को मत देखो, इस डेरे को देखो । इस डेरे की मर्यादा और मान को देखो ।"

सनसनाती हवा में यह आवाज रात भर गूंजती रही ।

: ७ :

भोर का तारा जैसे ही डूबा, वैसे ही वह बात प्रकाश की तरह सारे गाँव में फैल गई कि साहूकार प्रभु की शरण पधार गये हैं। साहूकार के घर से नवजात शिशु की तरह टूटता हुआ रोने का स्वर निकल रहा था । यह स्वर साहूकार की बुड्ढी बहिन का था, जो लोक-लाज के भय से रोना धर्म समझकर रो रही थी ।

उसकी स्त्री भीतर ओरे, (घर के भीतरी भाग का कमरा) में मौन-रोदन कर रही थी जिसे पड़ोस की औरतें पड़ोसी का धर्म समझकर सांत्वना दे रही थीं कि प्रभु को जो मंजूर होता है, उस पर आदमी का कोई अख्तियार नहीं है ।

कुछ पड़ोसी अर्थी बांध रहे थे । उनका कहना था कि हम जब तक अर्थी बांधेंगे तब तक इनके दूर के भाई का लड़का आ जाएगा और वह क्रिया-कर्म कर देगा ।

इस समय गाँव के पण्डित जी चुप नहीं रह सके । अश्रु-विहीन आँखों को अपने अंगोछे से पोंछते हुए दुख भरे स्वर में बोले, "पुरखों ने जो कहा, वह कितना ठीक कहा है कि, कपूत बेटा कांधा देने के तो काम आएगा । आज साहूकार जी निपूते नहीं होते तो 'हे रे बाप

ही है 'रे' चिल्लाकर रोने वाला तो होता। पर भगवान को जो
होता है उस पर बन्दे का कोई अख्तियार नहीं।"

देखते-देखते झौंटिया के अलावा सारे गाँव के जाने-माने व्यक्ति
थित हो गये। चौधरी पुरखाराम भी एक कोने में बैठा था।
का चेहरा भी साहूकार के निर्जीव शरीर को देखकर उदास हो
था। वह दुख से भर उठा, "एक दिन हरएक आदमी को इसी
में मिल जाना पड़ेगा।"

"पर बाबा, साहूकार बड़ा अत्याचारी था।"

"ऐसा नहीं कहना चाहिए, सेतू, मरने वाले के अवगुणों को
ना हमारे देश का धर्म नहीं, फिर हम सभी लोग देख ही रहे हैं
मरने वाला अपने साथ इस तीन गज कफन के अलावा कुछ भी
ले जा रहा है।"

होले-होले वातावरण पर वेदना का साम्राज्य स्थापित होने लगा।
कार की बहिन का टूटता हुआ स्वर अब भी आकाश में हल्की-
ी हवा की तरह आवाज करता हुआ गूँज रहा था। अर्थी बँध
थी।

पण्डित जी गोदान, जमीदान और दान पर दान करा रहे
मन्त्रों के बीच-बीच में सेठानी को सावधान करते जा रहे थे,
है सो दे दे, यह साहूकार जी का कमाया धन है, इनके पीछे
ा लुटा देगी, जगत तेरी वाह-वाह करेगा। कहेगा कि सेठानी
हाथ सेठजी के पीछे धर्म कर रही है।"

ों झौंटिया मास्टर के यहाँ पहुँचा।

झौंटिया उन्मादी की तरह खुशी में बोला, "नाचिये मास्टरजी
ये, घी-खांड (शक्कर) का चूरमा खाइये, चूरमा।"

"अरे क्यों?"

"किसी की मौत पर दूध का कटोरा पीकर आत्मा को तुष्ट

कीजिये, आप नही जानते, आज साहूकार देवलोक पधार गया है
भीटिया की आँखों और आवाज में उसके अन्तर का तिलमिला
आक्रोश एवं तीखी घृणा थी ।

"साहूकार मर गया?" मास्टर को जैसे विश्वास नही हो रहा था

"हाँ, इस जमी का पाप उठ गया ।"

"तभी तू खुशी मना रहा है ?"

"हाँ, नीच ने सारे गाँव का खून पी लिया था । किसी को
समझता ही नही था । गाँव मे ऐसे अकड कर चलता था जैसे
बड़े, गली सकरी, बाजार का रास्ता किधर है? ऐसे मरा जैसे कोई
बडा कमीना था मास्टरजी, मिनख को मिनख नही समझता था
इसके खेत-घर को कुडक कराया, उसको लूटा ...।"

"भीटिया ! आक्रोश की छिछली शब्दावली से बाहर निक
कर अपने हृदय के जोश को ठंडा न करो । साहूकार तो मर
गया, अब इन कारिन्दो का शासन देखना ।"

"कारिन्दो का नही, लालकुँवर का; बेचारी कुंवारी ही रह गई
व्यंग-मिश्रित बनावटी दुख से चेहरा उतारता हुआ भीटिया कहने ल
"माटरजी ! मुझे इस अखन कुवारी पर बडी ही दया आती
बेचारी ने स्त्री-सुख नहीं देखा, भगवान भी कितना निर्मोही है? सब
देखा, पर इस बेचारी को नही देखा ?

मास्टर ने उसे बीच मे ही रोका, "बस बस, रहने दे अपना उपदेश

भीटिया ने जोर से कहा, "हरखा बहन, दो गिलास दूध ।"

हरखा ने दो गिलास दूध लाकर उन दोनो के सामने रखा
उसकी आँखो मे मार्मिक वेदना थी ।

"हरखा ! तू किसका 'सापा' (मरने के बाद वृद्ध मृतक पर
दस दिन तक औरतें गा-गाकर रोती हैं) कर रही हैं ।"

"अपने खसम का?" तड़ाक से हरखा ने बिना सोचे-समझे उत्तर दिया और बिना किसी को देखे भीतर चली गई।

"क्या हुआ है इसे ?" भीटिया ने पूछा।

"रूठ गई ?"

"किससे ?"

"मुझसे।"

"आप से, यह क्या कहते हैं मास्टरजी ?"

"ठीक कहता हूँ, यह मुझसे नाराज हो गई है?"

"क्यों ?"

"हम लोग शहर चल रहे हैं न ?"

"मास्टरजी ?" भीटिया गम्भीर हो गया, "यह हरखा आपकी बहुत बड़ी इज्जत करती है।"

"जानता हूँ, इसने हम लोगों के साथ एक आत्मीय सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। हमारा विछोह सचमुच इसके लिए दुखदायी है।" मास्टर की आँखों में इतना कहते-कहते तरलता पैदा हो गई।

भीटिया हँस उठा, "लेकिन मास्टरजी, आप उदास क्यों हो गए?"

"मैं, नहीं तो ?" मास्टर संभला, "बात यह है कि यह नादान क्यों किसी से लगाव के बन्धन जोड़ती है। प्रेम, स्नेह, अपनापन, सभी तो इसके लिए घातक हैं।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि समाज जिस प्राणी पर सन्देह की दृष्टि रखता है, उसके पवित्र बन्धनों को इतना कच्चे धागे से पिरो देता है कि हाथ लगा और टूटे। इसलिए उसे हर दूसरे प्राणी से इतना ही सम्बन्ध रखना चाहिये जिसे लोग व्यवहार के नाम से पुकारते हैं। व्यवहार की परिधि का उल्लघंन उसके लिये जीवन को अभिशाप बन सकता है। उसके जीवन को दुखमय बना सकता है। लाछना, प्रताड़ना

और बुरी भावनाएं उसके दुःखमय जीवन को इस तरह छिन्न बनाने लगती हैं जिस प्रकार गिद्ध मरे जानवर की लाश को छिन्न करते हैं।"

मास्टर के इस गम्भीर कथन को भीटिया कुछ समझा और कुछ नहीं समझा। पर उसने इतना जरूर महसूस किया कि हरखा का उनके प्रति लगाव का बन्धन अच्छा नहीं है। कहीं मास्टर भी.........। नहीं, मास्टर जैसा साधु प्रकृति का आदमी बुरा हो ही नहीं सकता। वह गांव में शिक्षा का दान देने आया है, वह देगा और देकर एक दिन चला जायेगा।

"माटर जी ?" भीटिया को अपने आप पर गुस्सा आया कि उसने क्यों मास्टर जी के प्रति इस तरह की बुरी बात सोची। यह उसने अच्छा नहीं किया। वे निष्कलंक हैं।

और मास्टर उसकी ओर भावुकता से देख रहा था।

कुछ देर मौन रहने के पश्चात् भीटिया ने कहा, "बेचारी हरखा ने सुख का मुँह तक नहीं देखा ?"

"जानता हूं।"

"शायद सुख क्या है, सपने में भी इसने नहीं जाना होगा।"

"इसलिये ही तो कहता हूँ कि बहुत दिनों का प्यासा जल को देखकर इतनी उतावली से पानी का घूंट गले से उतारना चाहता है कि वह घूंट गले में अटककर भयानक पीड़ा देता है। इसलिये पानी को सामने देखकर प्यासे को और धीरज धारण करनी चाहिये, नहीं तो दुःख पाने की समस्या अचानक आ जाती है।"

"आप ठीक कहते हैं माटरजी, यदि आप कहें तो मैं ही उसे.....।"

"नहीं भीटिया, उसके दिल को मत तोड़ो, वह बहुत दुःखी है और हम भी तो फिर चले ही जायेंगे। हाँ, देखो, आज कृष्णकुँवर की बोंदी आई थी, उसने सन् 32 के झूठे राजद्रोह षडयन्त्र केश के

वीर सेनानी चन्दनमल बहड़ की दरख्वास्त सुननी चाही है, मेरे सिर में दर्द है, यदि तू जा सकता है तो वह फाइल लेकर चला जा। *बीकानेर का वह राजद्रोह षड्यन्त्र*, रियासती शासन की अत्याचार की वह नंगी मिसाल है जिसे सैकड़ों वर्ष जनता अपने हृदय से नहीं भूल सकती।"

"चलकर, सुना आऊंगा।"

"और मेरी ओर से क्षमा मांगते हुए कहना कि उनके सिर में आज बड़ा ही दर्द है, इसलिये नहीं आ सके।"

भींटिया चला गया।

मास्टर अपने बारे में सोचने लगा, "यदि वह उस मिट्टी में पैदा होता जो स्वतन्त्र होती, जहां मनुष्य के विवेक का इतना विशाल विकास होता कि वह सुधार को पाप नहीं समझता तो समाज अपने तेज नाखूनों से मजबूरों को नहीं सताता। शायद उस समय हरखो भी अपने लिये नये जीवन के रास्ते ढूंढ़ लेती।

: ८ :

भींटिया इतनी धीमी चाल से डेरे की ओर बढ़ रहा था जितनी धीमी चाल से बरसात की ऋतु में ममोल। उसकी दृष्टि [illegible]रज की ओर थी जो क्षितिज के अधरों को चूम रहा था और उसे [illegible]मने से जो प्रेमवर्षण किरणों के रूप में हो रहा था, उससे खेतों [illegible]ा सौन्दर्य निखर उठा था। बालों पर पड़ती हुई छितराती किरणों [illegible]ा प्रकाश प्रकृति के सौन्दर्य में मोहक आकर्षण पैदा कर रहा था। [illegible]रे-हरे पत्तों पर फैलती धूप की चमक से ऐसा महसूस हो रहा था। [illegible]
[illegible]

जैसे सौन्दर्य का एक झरना पश्चिम की ओर प्रवाहित होता हुआ है गाँव को सुनहला बना रहा है। उसकी अरुणिम रेत को इठलित बाना पहनाकर उसे विशेष प्रिय बना रहा है।

डेरे के आगे कुछ दास झाड़ू लगा रहे थे। कुछ डावड़िया डेरे से सामान ले जा रही थीं। दासों की अपनी मिट्टी तथा गोबर से लीपी राते (हल्का भूरा रंग) रंग की छोटी-छोटी कोठड़ियों से धुआँ निकलने लग गया था। मनका एक कारिन्दे से गर्म स्वर में बोल रही थी जिससे साफ मालूम होता था कि इस कारिन्दे ने मनका से कोई भद्दी छेड़खानी की है।

न जाने झीटिया को इस समय कृष्णा की बजाय ढोलकी के क्यों याद हो उठी ? वह चंचल और नटखट ढोलकी और उसके खट्टे-मीठे, चटपटे बोल। सब-के-सब झीटिया के मस्तिष्क में हलचल मचाने लगे।

तभी मनका ने दौड़कर उनकी अगवानी की।

"क्या, माटरजी नहीं आये ?"

"नहीं ?" झीटिया ने छोटा-सा उत्तर दिया।

"क्यों !"

"उनके सिर में दर्द है।"

"जोर का ?"

"हाँ, वे यहाँ तक नहीं आ सकते।"

वह अपनी आँखों को मटकाकर बोली, "राम-राम ! यह तो बहुत बुरा हुआ ?"

"बुरा क्या ? सवेरे तक ठीक हो जायेगा।"

"दवा ?"

पहले यह बता कि तू है कौन ?" झीटिया को महसूस हुआ

यह कौन फानतू छोकरी है जो फटाफट सवाल-पर-सवाल किये रही है।

"मैं मनका हूँ।" उसके स्वर में दृढ़ता थी।

"मनका ?"

"और तू।" उसने तेज नजर झौटिया पर जमा दी।

"मैं तो झौटियो हूँ।"

"झौटियो।" उसने ऐसा भाव दिखाया जैसे उसे यह नाम न्द नहीं है।

"नाक भौं क्यों सिकोड़ती है ?"

"नहीं तो।"

झूठ बोलती है, जा, तेरी बाईसा-बाईसा से कह दे कि झौटिया टर वाली दरख्वास्त सुनाने आया है।"

मनका तुरन्त डेरे में जाती-जाती बोली।

"तू भीतर आजा।"

"मैं भीतर नहीं आऊँगा ?"

"क्यों ?"

"तू पंचायत करना बन्द करेगी या मैं वापस चला जाऊँ ? जो मैं हता हूँ, वह जाकर अपने बाई सा को सुना दे, कृष्णकुंवर को।"

"भोत चोखो।" मनका ने बनावटी क्रोध में मुंह बिचकाया। कृष्णा नका के साथ बाहर आई। कृष्णा के चेहरे पर प्रसन्नता नाच रही थी।

झौटिया ने एक लम्बे अर्से के बाद कृष्णा को देखा था इसलिए खता ही रह गया। उसकी सुन्दर शक्ल की ओर उसकी दृष्टि-विमोहित-हो गई। वह देखता ही रहा, अनिमेष दृष्टि से।

"झौटिया ?" कृष्णा ने उसके ध्यान को तोड़ा।

"हुक्म बाईसा।"

कृष्णा एकटक दृष्टि से उस भीटिया को देखती रही जो कि
धाना मोटदार लग रहा था ।

'तू भीतर क्यों नहीं आया?" कृष्णा के स्वर में आग्रह था'
अतीत का भीटिया के स्मृति पटल पर घात, प्रतिघात ।
वह तिलमिला उठा, "मैं भीतर नहीं आऊँगा।"

"आखिर क्यों ?" उसके स्वर में गहरी आत्मीयता ने भी
की तिलमिलाहट को थोड़ा-सा हिलाया, "इसलिए कि ठाकुर सा'ने
बाप को लड़ाई में भेज दिया. मैंने तो नहीं भेजा। मैंने तेरे प्रति
अन्याय नहीं किया ! बाप की सजा बेटों को क्यों दे रहा है ?"

"हाँ, तूने तो नहीं भेजा, फिर भी मैं इस डेरे में नहीं आऊँ
इस डेरे की हर ईंट मुझे तेरे बाप के अत्याचारों की याद दिलाती है

"जो अत्याचार करता है, भगवान उसे सजा देता है ।
बाप भी उसकी सजा भोग रहा है । खैर, आज मैं तेरे संग कहीं
चल सकती हूँ। साहूकार जी की मौत के कारण ताराकुंवर बाई
गाँव के नये प्रबन्ध में लगी है। बोलो, कहाँ चलोगे, खेतों की मु
में या रेत के टीलों की ओट में ?"

"जहाँ आप कह देंगी, वहीं ?"

"पीछे वाली बारादरी पर चलोगे ।"

"चल सकता हूँ ।"

दोनों बारादरी की ओर चले । मैनका को छुट्टी दे दी ग
वर्षों के बाद दोनों मिले थे, इसलिये दोनों बिल्कुल चुप थे, कहाँ
बात छेड़ी जाय, दोनों यह सोच ही रहे थे कि भीटिया ने कहा, "
मास्टरजी ने दरख्वास्त सुनाने भेजा है ।"

"तो क्या, तू पढ़ना भी जानता है ?"

"केवल जानता ही नहीं हूँ, आपको भी पढ़ा सकता हूँ ।"

"सच ।"

"हाँ।"

'फिर मास्टरजी को माटरजी क्यों कहता है ?"

"आदत के कारण।" वह मुसकराया।"

उसके स्वर में अपनापन छलछला उठा।

दोनों की आँखें टकरा गई। भींटिया शर्मा गया। वह सोचने ा कि उसे कृष्णा के सामने इतने अभिमान की बात नहीं कहनी ाहिये। वह शहर से पढ़-लिखकर आई है। कितने अच्छे ढंग से ोलती-चालती है।

'तू छोरियों की तरह क्यों लज्जा रहा है ?"

"बात यह है"।" वह पूरा नहीं बोल सका।

"अच्छा, यह दरख्वास्त सुना तो।

भींटिया की निगाहें एक पल कृष्णा की हंस के पंखों की भाँति ंचल पुतलियों पर टिकी और फिर वह उस दरख्वास्त को पढ़ने लगा,

दरख्वास्त

अदालत डिस्ट्रिक्ट जजी,

सदर बीकानेर,

ानाबे आली,

मुकदमा सदर में मुझ मुजलिम की अदब से गुजारिश है कि ार्यवाही मुकदमा शुरू करने के पेश्तर पुलिस ने मेरे ऊपर जो रोमांच-ारी अत्याचार व पाशविक जुल्म किये हैं, उनकी बराय मेहरबानी हाहकीकात फरमाई जाकर तदारुक फरमाया जावे।

(1) यह कि तारीख 13 जनवरी को मेरी गैर-मौजूदगी में मेरे ार की तलाशी पुलिस ने ली। इन्सपेक्टर पुलिस राजवी चन्द्रसिंह मय ार्टी मेरे घर में बिना इत्तला दिये सीधे ही घुस गये, मेरी स्त्री के सिवाय कोई घर का आदमी न था और गोमायल की स्त्री पर्दानशीन ा जो इज्जत घराने की है, मगर बावजूद इसके भी चन्द्रसिंह राजवी

जी इन्सपेक्टर ने उसको धमकियाँ देकर अपने सवालों का जवाब
को मजबूर किया। इन धमकियों की वजह से व अचानक इस त
मय पार्टी उनके घर में घुस आने की वजह से उस शरीफ औरत
रोब-दाब कर दिया और वह निःसहाय अबला बेहोश हो गई
उसका बदन थर-थर काँपने लगा और चक्कर आने लगे।

(2) यह है कि असना में सायल की माता व चचेरा भाई
फाक से वहाँ आ गये। इन्सपेक्टर साहब पुलिस ने अपनी पार्टी के
उन जीइज्जत स्त्रियों की जामा तलाशी किसी एक मुसम्मा गीगली
कराई ताकि उनको लोगों के सामने बेमुरव्वत व जलील किया जा
इन्सपेक्टर साहब पुलिस मुसम्मात गीगली को उन स्त्रियों के बदन
कभी अपने हाथ से व कभी बेंत से छूकर हिदायत करते थे कि
की तलाशी लो, व वहाँ की तलाशी लो। यह अर्ज कर देना मुना
होगा कि सायल मुलजिम एक पोजीशन का आदमी है और वह
चूरू की म्युनिसिपल कमेटी व अनिवार्य शिक्षा कमेटी का चुना मे
है और कलकत्ते में स्टर्लिंग एक्सचेंज की दलाली करता है।

(3) यह कि तलाशी 12 बजे दोपहर से लगाकर 12बजे
तक ली जा रही है, मगर इस असना में खाना बनाने व बाल-ब
को खिलाने तक की सहूलियत भी नहीं दी गई। बवक्त तलाशी
टीन के छप्पर के नीचे जो चारों तरफ से खुला और जिसमे गा
बछड़े बंधे रहते हैं, इन स्त्रियों व बच्चों को बिठाये रखा।

"जंगली कहीं के।" कृष्णा के मुंह से हठात् सरोष नि
शब्दों ने भीटिया के तारतम्य को तोड़ दिया। भीटिया ने कृष्णा
जलती हुई मुद्रा को देखा और पढ़ने लगा।

(4) यह कि गो वारन्ट तलाशी महज सायल तलाशी मुलजिम
खिलाफ था फिर भी इन्सपेक्टर साहब पुलिस ने उस हिस्से मकान
तलाशी ली, जो मेरे चचेरे भाई के कब्जे में है और जो कि

कोई सरोकार नहीं रखता व अलहदा रहता है, खिलाफ कानून व जाब्ता मन्शा वारन्ट ली। हालांकि मेरे भाई श्री लाल ने इस बात पर सख्त एतराज किया मगर एतराज की कुछ सुनाई न की गई और श्री लाल की औरत के बक्सों व ट्रंकों के ताले तोड़ दिये गए, क्योंकि वह अपने मामा के गई हुई थी और चाबियाँ उसी के हमराह थी।

(5) यह कि गो वारन्ट खाना तलाशी में यह साफ लिखा हुआ था कि पुलिस महज ऐसी दस्तावेजात अपने कब्जे में लेवे जो बीकानेर राज्य के खिलाफ हिकारत व बेदिली फैलाने की मंशा रखती हों, मगर पुलिस ने बिना अख्तियार भारतीय राष्ट्रीय नेताओं की तस्वीर व सायल मुलजिम की बनायी हुई कविता जो अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के अष्टम अधिवेशन कलकत्ता के मौके पर सभापति लाला लाजपतराय के स्वागत मे पढ़ी गई थी, 48 प्रतियाँ व अन्य समाज-सुधार सम्बन्धी जातीय पत्र-पत्रिकायें भी पुलिस ने अपनी तहवील मे ले ली।

(6) यह कि वारन्ट खाना तलाशी की तामिल इस तरीके से की गई कि खौफ बरपा कर दिया जाय और गो वक्फा तलाशी मे कि जो बारह घन्टे का था, तमाम घर को बुरी तरह से छान-बीन कर डाला, फिर भी इन्सपेक्टर साहब ने जान-बूझ कर वर्दी के साफे को कहीं छिपा दिया और यह बहाना बनाया कि अपना पल्लू ढूंढ़ने के लिये मैं कल फिर आऊँगा। जिस वजह से मेरे घर वाले दुबारा तलाशी के डर में मुब्तिला रहे।

यह कि एकाएक 15 जनवरी को करीब 6 बजे शाम को वही इन्सपेक्टर पुलिस हमराह अफसरान व कानस्टेबलान पुलिस मेरे घर मे घुस आये और मुझे व आवाज बुलन्द कहा है कि तुम्हें कुछ देर के लिये कुँवर सम्बलसिंहजी साहब डी.आई.जी.पी. रेस्ट हाउस पर बुला रहे हैं चलो। चूंकि खाना तैयार था, मैंने खाना खा लेने की मोहलत

चाही, पर मोहलत न दी और कहा कि चलो, वहाँ थोड़ी ही देर लगेगी। वापिसी पर आ लेना। व अमल मजबूरी मैं उनके साथ हो लिया।

(8) ज्यों ही सायल मुलजिम रेस्ट हाउस पर पहुँचा, पुलिस के अफसर साहब ने मुझे एक बगल के कमरे में बन्द कर दिया और हुक्म दिया कि तुमको हमारे साथ बीकानेर चलना होगा. तुम्हारा बिस्तर व सफर खर्च व खाना यही मंगवा देता हूँ। मगर तुमको अब घर नहीं जाने दिया जायेगा और न अब तुम किसी से मिल सकते हो।

(9) मेरा भाई जो बहुक्म पुलिस मेरा खाना व बिस्तर लेकर आया, उसे मुझसे मिलने व देखने तक भी नही दिया गया और टेढ़े मेढे रास्तों से सर्दी मे रात के ग्यारह बजे मुझे रेलवे-स्टेशन पर लाकर एक कमरे मे बन्द कर दिया और बाद में मुझे छिपाकर रेल के अन्धेरे डिब्बे में बैठाकर खिडकियाँ डाल दी गई ताकि मेरे ले जाने का सुराग किसी को न लग सके।

(10) तारीख 16-1-32 को बीकानेर पहुँचने पर मुझे शहर से बाहर बियाबान जंगल में एक निहायत ही गन्दे बेआबाद मकान में हिरासत में रख दिया और चार कास्टेबिल हर वक्त मुझ पर कड़ा पहरा देते रहे व इन्सपेक्टर साहब पुलिस मजकूरा वाला मुझे धमकियाँ, लालच व फुसलाहट से तंग करते थे।

(11) 19 जनवरी को एकाएक शाम को 5 बजे राजवी चन्द्रसिंह जी इन्सपेक्टर ने मुझे बिस्तर बाँधने का हुक्म दिया और मुझे टेढे-मेढ़े रास्तो से स्टेशन ले गये। इन्सपेक्टर साहब खुद तो साइकल पर सवार थे और मुझे उनके साथ पैदल ही भाग-दौड़कर 15 मिनट मे करीब डेढ़ मील का रास्ता तै करना पड़ा और रेलवे स्टेशन पर लाया जाकर मैं बन्द डिब्बे में बैठा दिया गया। दो कॉस्टेबलान सब इन्सपेक्टर साहब मजकूरा वाला मेरे हमराह बनकर बैठ गये और मुझे बार-बार दरयाफ्त करने पर भी यह नहीं बताया कि कहाँ ले जा रहे हैं।

एकाएक रतनगढ स्टेशन पर उतारा गया और धर्मशाला में रायसिंह छात्र ट्रेनिग स्कूल व लक्ष्मनसिंह कॉस्टेबिल के पहरे में बैठाकर इन्सपेक्टर साहब खुद चले गये और थोडी देर बाद हमराह हवलदार, रेलवे पुलिस व एक दीगर कॉस्टेबिल इन्सपेक्टर साहब वापस आये और आते ही मुझे हथकड़ियाँ डाल दी और कहा कि तुम्हे 124 अ में गिरफ्तार किया जाता है । रात को दो बजे जिला मजिस्ट्रेट साहब रतनगढ़ के रूबरू कमरे की ग्रायत मे हाजिर कर 15 रोज का रिमाण्ड पुलिस ने लिया गो सायल मुलजिम ने एतराज भी किया ।

"एतराज से क्या होना जाना था, पूरा जाल था कानून के नाम पर।" क्रोध था क्रुष्णा के स्वर में ।

(12) 20 जनवरी को मुझे बीकानेर लाइन पुलिस में लाया गया और महज जलील करने की गरज से मेरा बिस्तर भी मेरे कन्धों पर लदवाया गया । पुलिस लाइन में मुझे नम्बर 9 की कोठरी में हथकड़ियाँ लगी बैठाकर, हथकड़ी की जज़ीर का दूसरा सिरा चारपाई मे ताले से जड़ दिया गया । 21 जनवरी से ले 3 फरवरी तक सवेरे एक गज से भी चौड़े पाँव कराकर व हाथों को सीधा फैलाया रखकर मुझे खड़ा किया जाता था । ता० 21-1-32 को रामसिंह ने मुझे सीधा खड़ा रखने की निगरानी मे बहुत-सी माँ बहिन की फोश गालियाँ दी, गला पकड़कर मेरा सिर दीवार से टकराया और छाती व सिर मे घूंसे लगाये । अ नीज पर मारने के लिए अपना जूता भी उठाया और फोतो पर ठोकर मारने की भी चेष्टा की ।

(13) ता० 22 जनवरी को आई.जी.पी. साहब व डी.आई.जी. पी. साहब ने मुझे गालियाँ दीं और अपने श्रीमुख से फरमाया कि यह साला बदमाश है । यह बहन""मादर""(वगैरह) फोश गालियाँ देकर कहा, यों इकबाल नही करेगा । इतना कहकर खुद उन्होंने मेरे बायें कान व गाल पर थप्पड़ लगाये व बाद मे जब तक मैं वहाँ रहा,

इनका ऐसा ही सलूक मेरे साथ रहा । यही वजह है कि मेरे कान में बहुत अर्से तक दर्द रहा और अब मुझे उस कान से सुनाई भी नहीं देता।

"वास्तव में भौंटिया मैं लोग अत्याचार पर सही कायम किए हुए है।" पर भौंटिया लगातार पढ़ता ही जा रहा था।

(14) करीब तीसरे या चौथे दिन राजवी चन्द्रसिंह जी ने आई जी पी. व डी.आई.जी पी. साहब से, मेरे रूबरू मेरी तरफ इशारा करते हुए कहा कि मैं आज ही ट्रेन से इसकी माँ व औरत व बच्चों को चूरू से यहाँ बुला लूँ या वहीं पुलिस-लाइन से बाहर रखूँ। इस पर आई जी पी. साहब ने फरमाया कि यह काफिर सुअर ऐसे नहीं बताता तो कोई हर्ज नहीं। उन सबको यहीं बुला लो और इसी के सामने उनकी दुर्गत करो। उनके""मे मिरचें भर दो, नगी करके" पर लगाओ।

कृष्णा तड़प उठी, "बन्द कर दो भौंटिया, इन नर-पिशाचों के अत्याचार की कहानी। ऐसा मालूम पड़ता है कि न्याय-प्रिय प्रजावत्सल राजा का असली रूप यही है। मैं कहती हूँ कि सच्चा इतिहास यही है कि ऐसे राजा राजा नहीं, प्रजा के हत्यारे हैं।"

कृष्णा आवेश में काँपने लगी।

भौंटिया ने कहा, "अब उस दानवी इंसपेक्टर की तो दयानुता देखिए। वे फरमाने लगे, "मैं देख आया हूँ कि तेरी औरत का दिल बड़ा कमजोर है और वह बीमार भी है। वक्त तलाशी वह बेहोश हो गई थी, और उसे चक्कर आने लगे थे। अगर तू हमारा कहना नहीं मानेगा तो तेरे सामने ही उसकी दुर्दशा की जावेगी।

—उसके स्तनों में तेजाब लगाई जाएगी।

कृष्णा का सहज नारीत्व फुफकार उठा। वह क्रोध में लाल हो उठी, "अपनी माँ के क्यों नहीं लगाता?"

भौंटिया पढ़ता ही गया।

—व्यभिचार, भयंकर, खूँखार अत्याचार उन पर छोड़ जावेंगे।

—तेरी तीन वर्ष वाली लड़की के भी मिरचें की जावेंगी।

'बड़ा कमीना था, जैसे उसके घर में माँ-बहिनें हैं ही नहीं, जरूर
वह आदमी की नहीं, शैतान की औलाद है।" कृष्णा ने घृणा से कहा।

—छः महीने वाले बच्चे को फर्श पर पटकवाऊँगा।

'राक्षस कहीं का।"

—आठ वर्ष वाले लड़के को औंधा लटकवाऊँगा, फिर साले
हरामजादे।

"बस, बस, भीटिया बन्द करो। इन राक्षसों की जुल्मों की बातों
को सुनने से अच्छा है, कि इनको मैं ही गोली से उड़ा दूँ।"

भीटिया ने आवेश में आगे पढ़ा, 'तुझे तभी होश आवेगा कि
देश-भक्ति कैसे की थी और कैसे कांग्रेस मैन का बच्चा बना था,
नहीं तो, मैं जैसे कहूँ, वैसा लिख दे।"

"भीटिया अब कृपा करके बन्द कर दो, नहीं तो गुस्से और
द्वेष के मारे मैं पागल हो जाऊँगी।"

भीटिया ने फाइल बन्द कर दी।

उसकी आँखों में आँसू छलक आये थे। भीटिया ने आँसू-भरी आँखों
कृष्णा को ओर देखा। वह उदास थी। वेदना के कारण उसके
नुषाकार लाल अधर काँप रहे थे।

"यदि तू पूरा हाल सुनती तो अपना सिर इन पत्थरों से फोड़
ती। मनुष्य इतना नीच हो ही नहीं सकता, जितना यह है।"

"हाँ भीटिया, ये राजा लोग दैत्यराज्य हैं और ये अफसर लोग
त्य। सच तो यह है कि मैं" मैं"। अच्छा भीटिया।" कृष्णा ने कोई
चकर निर्णय करते-करते अपने को रोका। जैसे उसके अचेतन मन
सावधान कर दिया हो। कपोल पर आई हुई अलक को हटाकर
क लम्बी आह छोड़ी, "आजकल तू है कैसा?"

"अच्छा हूँ, माटरजी के साथ शहर जा रहा हूँ। माटरजी कहते हैं कि तू बड़ा होशियार है।" वह स्वयं अपनी आत्म-प्रशंसा कर रहा
"अरे चोटी।" कृष्णा ने झपटकर झीटिया के गाल पर घुसी हुई चोटी को चुटकी मे पकड़ ली, 'यह चोटी कहाँ से लगा लाये।'
"चोटियाँ यहीं लगती हैं।" वह मुसकराया।
कृष्णा एकदम झेंप गई, "अभी भी तू वैसा ही शैतान है।"
"माटरजी तो ऐसा नहीं कहते।"
"वे तुम्हें चाहते हैं।"
"और तू…।" अनायास झीटिया के मुंह से इतना वाक्य निकल गया। कृष्णा कश्मीरी सेब की तरह लाल हो उठी। बड़ी मुश्किल से उसने कृष्णा की ओर देखा। दोनों शर्माये हुए थे।
"झीटिया, अब तो तू मुझसे नाराज नहीं है।"
"नहीं।" झीटिया ने सरलता से कह दिया।
"सच।"
"हाँ, बचपन की बातें बचपन मे ही खत्म हो गयी।"
कृष्णा ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर मुस्करा दि
"झीटिया! बाप का दंड बेटी को देना भी तो न्याय नहीं। क
मेरे बाप ने किया, उसका फल उन्हें मिल रहा है। उनका फूल
बेटा गया, दिमाग गया, बड़ी बहिन कुंवारी रहकर उनकी छाती
बैठी है। बुड्ढी भी होती जा रही है। मैं अब…।" वह कुछ
रुककर बोली, "कौन-सा सुख है हमें, दुख ही तो दुख है। फिर
लोग क्यों हम जैसों से घिन्न करते हो?" उसका कंठ भर उठा
"कृष्णा तू सांचेली बहुत दुखी है?"
"हां।"
"क्यों? खाने को मिलता है, पहनने को मिलता है, ये मह
मालिये, ये दास-दासियां, फिर तुम्हें दुख किस बात का है?"

"मालकुंवर बाई सा को देख रहे हो, नारी का यह घुटता हुआ अहंकारी रूप तू ने कहीं देखा है ?"

भीटिया चुप हो गया। उसके पास इसका उत्तर नहीं था। मालकुंवर तो दिन-प्रतिदिन कठोर और क्रूर होती जा रही है। क्या कृष्णा भी ?

"फिर कब मिलोगे ?" कृष्णा ने उसके विचारों को भंग किया।

"अब तो मैं शहर जा रहा हूँ, आकर ही मिलूँगा।"

"इसके पहले एक दफे नहीं मिलोगे ?"

"मिल लूँगा, जाने से पहले।"

भीटिया गर्दन नीची करके चल पड़ा।

कृष्णा उसे चाह-भरी दृष्टि से जब तक देखती रही तब तक वह उसकी आंखों से ओझल नहीं हो गया।

: ६ :

उसी रात मास्टर को तेज ज्वर आ गया। सिर की पीड़ा से मास्टर की आकुलता बढ़ती गई। आँखें लाल टमाटर जैसी हो गई। हरखो मास्टर के कहने पर उसके सिर में तेल-मालिश कर रही थी।

तारे आकाश में मद्धिम दीपकों की तरह चमक रहे थे। आकाश-गंगा अपने पूरे यौवन पर थी। सप्त-ऋषि मंडल अब भी छोटे-छोटे बच्चों का कौतूहल बना हुआ था। लोमड़ी की हुआँ-हुआँ कभी-कभी रात की शून्यता को भेदकर भय का संचार कर देती थी तो, कभी-कभी कुत्तों की भों-भों वातावरण में गूँजती हुई झींगुरों की प्रिय वाणी में एक अप्रिय धक्का लगा देती थी।

रात ढल रही थी।

हरखा अब भी अपने स्नेह-भरे हाथों से मालिश करती जा रही थी।

नीशिथ के होने का अन्दाजा आकाश में ढलती हुई स्वेत-तारिका ने बताया।

मास्टर ने अपनी आँखें खोली।

दीये का प्रकाश मुस्करा पड़ा।

हरखा के नयन में सहस्त्र दीपों की ज्योति चमक उठी।

"अब जी कैसा है ?"

"दर्द कम हो गया है।"

हरखा ने अपने नयन मूंदकर न जाने किस आराध्य को हाथ जोड दिये, स्वयं मास्टर भी नहीं समझ सका। उसके फड़कते हुए होंठ मास्टर के चिरायु व कुशलक्षेम की कामना कर रहे थे, ऐसा प्रतीत पड़ता था।

"हरखा! तू सोई क्यों नही ?" मास्टर ने उसके विचारों में अवरोध उत्पन्न किया।

"मुझे नींद नही आई।"

"क्यों ?"

"ऐसे ही शायद चिन्ता के कारण।"

यह सच है, रिश्तों की कोई परिभाषा नही होती! मास्टर ने दार्शनिक की भाँति अपने सवाली का हृदय कुरेदा।

हाँ मास्टरजी, मैं आपकी नौकरानी हूँ? यह भी एक नाता है? बताइये मास्टरजी, कहिये न, मास्टरजी।" हरखा का स्वर एक

इतना कष्ट उठाकर अपनी सेहत को खराब करना अच्छा नहीं और मैं भी तो शायद इसे पसन्द नहीं करता ।"

हरखा की गहरी तन्मयता ने उसके आँचल के पल्लू को सिर से सरका दिया । उसने उसको व्यवस्थित किया । दुःख उसके स्वर में फूल की सुगन्ध की तरह बस गया, "मैं जानती हूँ कि आप मेरे कोई कभी नहीं होते । गरीब का क्या कोई होता भी है ?"

"ऐसा न कहो, हरखा ।"

"क्यों, माटरजी ?"

"मैं तो कहता हूँ कि मोह के बन्धन बहुत बुरे होते हैं । बन्ध जाने पर टूटते ही नहीं, और मेरा क्या भरोसा ? दो–चार दिन में शहर चला जाऊँगा ।" नौकरी है । बदली भी हो सकती है ।

"फिर अपनी इस नौकरानी को भूल जाओगे । फिर इतनी भी सुध–बुध नहीं लोगे कि हरखा जीती है या मर गई । उसे एक रोटी के लिये टके-टके की बात सुननी पड़ती है या नहीं, माटरजी ! मुझे भी अपने संग शहर ले चलिये, मैं आपके पाँव पड़ती हूँ" और हरखा ने मास्टर के दोनों पाँव अपने हाथों से पकड़ लिये ।

मास्टर चुप था, बुत हो गया ।

वह सोचने लगा, "मनुष्य के दायरे इतने संकीर्ण न होते तो आज वह हरखा को पनाह जरूर दे देता । पर लोग उसकी पनाह को पनाह न समझकर हरखा और उसके सम्बन्ध में गलत–विचार फैलायेंगे । निराधार अटकल बाजियाँ लगाकर उसको पीड़ा पहुँचायेंगे"

और मास्टर के सामने वही सपने वाला दैत्य क्रूर अट्टाहास कर उठा ।

मास्टर विचलित हो गया । उसे सारा गाँव अपने पर थूकता हुआ नजर आया । उसे गाँव की सारी प्रकृति यह कहती हुई प्रतीत

हुई कि यह गाँव में शिक्षा का प्रचार करने आया है, या गाँव की भोली-भाली छोरियों को बरगलाने ?

मास्टर ने दयार्द्र होकर हरखा की ओर देखा और हरखा ने क्रोध मे तमतमाकर जोर की फूंक से दीया बुझा दिया। घोर अन्धेरा छा गया।

: १० :

झीटिया सोच रहा था, "कल वह काका के हरे-भरे खेत, सोंधी-सोंधी सुगन्ध वाली मिट्टी, और अपने जीवन की सबसे प्यारी वस्तु 'ढोलकी' को छोड़कर शहर चला जायेगा। फिर न तो यहाँ बच्चे उन दोनों को साथ-साथ देखकर तालियाँ बजा-बजाकर कहेंगे कि किस की ढोलकी किसका टम, चाल मेरी ढोलकी ढमाकढम और न ही गाँव की युवक व युवतियाँ डाह से जलेंगी। उसके कानों में बार-बार 'साधूड़े' के वे शब्द गूँज उठते थे, "जोड़ी क्या है, थूकना डालने लायक (नजर लगे जैसी) ?" राधा और कृष्ण मालूम होते हैं। कल यह राधा-कृष्ण की जोड़ी बिछुड़ जायेगी। दूर बहुत दूर चला जायगा, राधा का कृष्ण, बेचारी राधा...।"

"झीटिया !" ढोलकी ने धीरे से पुकारा।

झोंपड़ी में अमावस जैसा अंधियारा था। घोर अन्धकार में झीटिया कल्पना के पंख पर उड़ा जा रहा था।

"इस घोर अंधकार मे किसकी दो-पाँच कर रहे हो, जरा दीया जलाओ न।"

झीटिया ने दीया जलाया।

झोंपड़ी प्रकाश से जगमगा उठी ।

"ऐ ढोलकी, आज तुझे नींद नहीं आई ?"

"नहीं ।"

"क्यूं ?"

"कल तू मुझे छोड़कर जा रहा है, न ?"

"हाँ जाना ही पड़ेगा, काका तो मना नहीं कर रहा है, यदि काका बरज दे (मना कर दे) तो मैं भी माटरजी को टाल दूं ।"

"काका तो कहता है कि झीटिया शहर चला जायेगा तो मिनख बन जायगा ।"

मैंने पूछा, "खेत का काम ?"

"उन्होंने उत्तर दिया, कोई मजूर रख लेंगे । पर झीटिया, शहर जाकर कुछ गुण अपने पल्ले बाँध लेगा तो हमारा आधा जुलम खत्म हो जायेगा । अनपढ़ आदमी का आधा जीवन दुखों में बीतता है ।"

"तब तो जाना ही पड़ेगा ।"

जा भले ही पर मुझे भूलना मत, देख, झीटिया, यदि तू वेगा लौट कर नहीं आया तो मैं तेरे पीछे गैली हो जाऊँगी ।"

थूक तेरी जबान से, ऐसे अणुते (अनुचित) बोल मत निकाला कर, मैं शहर से तेरे लिए अच्छी-अच्छी जिन्से लाऊँगा । गले का सतलड़ा हार, पाँवों में पायल, आँखों का सूरमा ।"

"ये सब क्यों ?" पुलक उठी ढोलकी ।

"तू नहीं जानती ?"

"ऊँ हूँ।"

"झूठी कहीं की ।"

"सच, भला मैं तेरे मन की बात कियाँ (कैसे) जानूं ?"

"तू तो कालजे की बात भी निकाल लेती है ।"

तेरे कहने से क्या ?"

"फिर बनती क्यों है ? क्या तू नहीं जानती कि तेरा-मेरा ब्याह होने वाला है ?" झीटिया ने लपक कर अपना हाथ उसकी ओर बढ़ाया, उसने उसे रोकते हुए कहा, छिः छिः यह क्या कर करत हो ?" और वह शर्मा गई। उसके कपोल सुर्ख हो उठे। आँखें झुक गई। आँचल का पल्लू एक हाथ की अगुली के चारों ओर लिपटने लगा।

"ढोलकी तू मेरे सागे ब्याह करने से राजी है ?"

ढोलकी ने हाँ के सकेत मे सिर हिला दिया।

"पर आजकल तू मुझसे दूर-दूर क्यों रहती है ?"

झीटिया ने ढोलकी के दोनो हाथो को अपने हाथों में ले लिया फिर ठोडी को पकड़कर चार नजरें की, "लाग (प्रेम) लगी फिर ला किसी ?"

ढोलकी उससे बिल्कुल लाल हो उठी।

"अच्छा, अब मैं जाती हूँ।" ढोलकी उठ गई। झीटिया ने उ हाथ पकड़कर वापस बिठा दिया, "बैठ न, क्यों इतनी उतावल क रही है। कल तो मैं शहर चला जाऊँगा।"

ढोलकी फिर बैठ गई।

लेकिन उसके बाद झीटिया कुछ भी नहीं बोल सका। दोनो कु देर तक दीये की लौ को एकटक देखते रहे फिर झीटिया ने त ही कहा, 'अब तू जा, तू तो कुछ बोलती ही नहीं, फिर मैं क्य बोलू।

ढोलकी मुस्कराती हुई चलने लगी।

बाहर निकलती हुई ढोलकी का झीटिया ने पल्लू पकड़ा। ढोलकी की बड़ी-बड़ी आँखें झीटिया के चेहरे पर टिक गईं।

"पल्लू छोड़ दे। जी भरता नहीं है क्या, मुझ से ?"

झीटिया ने पल्लू छोड़ दिया, "ढोलकी ! कल मैं शहर चला जाऊँगा, आज तो जी भरकर देखने दे।"

ढोलकी ने एक लम्बी आह छोड़ दी ।

उस रात ढोलकी सो न सकी । भीटिया की स्मृति और भविष्य की सुनहरी कल्पना उसकी आँखों के आगे मूर्त हो उठी । उसने सोचा मेरा भीटिया शहर से बीकानेर का छैला बनकर आयेगा । ब्याह आयेगा और ब्याह के बाद.........।"

वह सोच ही रही थी कि बाहर काँसे की थाली बजने की झन-झन्नाहट सुनाई पड़ी ।

ढोलकी ने अपने आप कहा, "किसी के लड़का हुआ है ।"

"बधाई है, केशवराम की माँ, तेरे पोता हुआ ।"

"बधाई, भाई तुम्हे ही है, भतीजें तो तेरे ही हुए है ।"

"भतीजे ?" वह चौंका ।

"बेला (जुड़वा) हुआ है ।"

बाहर केशवराम की माँ और दाताराम बातचीत कर रहे थे । केशवराम की माँ पचास से ऊपर पार कर चुकी थी । किसी की परवाह किये बिना ही वह गीगा—लोरी गा उठी । उसके पोपले मुंह से निकला कर्कश स्वर भी ढोलकी को आज बहुत प्रिय लग रहा था । नारी के हृदय की मातृत्व की भावना उसके अंग—अंग मे आह्लादित कर रही थी ।

बुढ़िया का कर्कश स्वर रात की नीरवता में गूंज रहा था ।

"लोरी म्हारा रे गीगा लोरी"

हे तने वे सों ही जतनोरा रे जाया, धाय राज लोरी

हो दाई—माई ने वेग बुलावो

हे इये गीगलीये रो नाजक जीव छुड़ावे हे सइयाँ । लोरी....

हो जोशी जी ने वेग बुलावो

हे इये हालरिये री वेला तो हे लेरावो हे सइयाँ । लोरी....

हो भुवा बाई जी वेग बुलावो

हे इये गीगलीये रा हरख करावो हे सइयाँ । लोरी.......

हो दरजी जी ने वंग बुनावो
हे इये हामरीये रा सामडणियो हे सींवावो हे मदर्‌दा। लोरी"
हो इये सोनी जी ने वंग बुनावो…
हे इये गीगलीये रे हूंसली कड़ा घड़ावो हे मदर्‌या। लोरी"

गीत मे पूरा रूपक बंधा हुआ था। ढोलकी ने कल्पना की। उसका विवाह हो चुका है। उसका पाँव भी हो गया है। … काका बहुत ही खुश है। भींटिया शहर गया हुआ है। वह … उसके दो दिन पहले वह सुवावड़ती (जच्चा) हो जाती है। आधी को भींटिया चोर की तरह धीरे-धीरे उसकी कोठड़ी में आता है कोठरी दीपक जल रहा है। धीमे से पुकारता है, "ढोलकी, ए ढोलकी।"

ढोलकी आँखें खोल देती है। उसके अधरों पर नारी के पूर्ण की हँसी नाच उठती है। उसका चेहरा गौरव से दीप्त हो उठता है।

"कितने है?" वह मजाक के स्वर मे पूछता है।

"दो।" ढोलकी अंगुली से बता देती है। भींटिया उसके पास आ जाता है। दीये के प्रकाश मे दोनों बच्चो के प्यारे-प्यारे दीख रहे है। वह उनकी ओर हाथ बढ़ाता है तो ढोलकी सं… सावधान हो जाती है।

"तू यहाँ क्यो आया है?"

"तुझे देखने।"

"क्यो?"

"जी नही माना।"

"शहरी बाबू होकर तू बड़ा निर्लज्ज हो गया है। जा जल्दी भाग जा। कही कोई देख लेगा तो…छि-छि…"

"नही, पहले उन दोनों को हाथ मे लेकर दिखा दे।"

"मैं नही दिखाऊंगी।"

"अरे क्यो, धन धनियों का है, तुझे क्या डर है?"

"दोनों चन्दा और सूरज है।"

"सच।"

"तेरी नजर लग गई तो?"

"बाप की नजर नहीं लगती।"

"नजर बाप की क्या, जी–मोरे (राजी खुशी) को लग जाती है।"

"पर मैं नहीं दिखाती।"

"नहीं दिखाती, तो ले तुझे छूता हूँ।"

"ठहर-ठहर, ले देख।"

भोटिया पितृत्व की समस्त भावना लेकर अपने दोनों नन्हें-मुन्हे को देखता है। किसी चीज की चिंता किये बिना ही वह ढोलकी के गाल पर हल्की चपत लगा देता है, "तू बड़ी भागी है।"

ढोलकी सम्मान से बाग-बाग हो जाती है।

"दोनों को संभाल लेगी।"

"क्यों नहीं?"

"मतलब?"

"यह धरती के देव हैं शहरी बाबू, और धरती माता अपने देवों को कभी भी दुःखी नहीं देख सकती। वह स्वयं उन दोनों का पालन-पोषण कर लेगी।" विश्वास है ढोलकी के स्वर में।

"क्यों कर लेगी?"

"तू नहीं जानता, कल ये दोनों बड़े होकर इस धरती की रखवाली करेंगे। इसे बोयेंगे, जोतेंगे और हरी-भरी करेंगे। अपने पोसने वालों को कोई भी मरने नहीं देता।" दार्शनिक के स्वर में वह कहती गई।

भोटिया ने देखा है कि गाँव की इस ग्वारिन में महान् आत्मा के दर्शन हो रहे हैं। उसे अपने बच्चों द्वारा भविष्य के कर्त्तव्य के पूरे होने की पूरी संभावना है।

मुर्गे ने बाँग दी तो ढोलकी का सपना भंग हो गया।

वह बिस्तरा छोड़ती हुई कह उठी, "ओह! भोर हो गया?"

: ११ :

मास्टर ने पुकारा, "हरखा।"

शब्द घर में गूंजकर पुनः उसके पास आ गया।

मास्टर उठा। सारा घर ढूंढ डाला पर हरखा का कोई नहीं लगा। मास्टर के हृदय पर आघात लगा। लेकिन उसने कि जाने का सारा सामान बंधा है। पानी की लोटड़ी से लेकर रोटी भी बनाकर उसने एक कपड़े में बांध दी है। उसने ज़ोर पुकारा, "...... अरे ओ मग्गू।"

दस वर्ष का एक काला-कलूटा लड़का आकर मास्टर के खड़ा हो गया।

"यह बिस्तरा और सामान उठा।" मास्टर की आज्ञा पाते उस काले-कलूटे लड़के ने अपने कंधे पर सामान उठा लिया।

मास्टर ने घर को सतृष्ण-दृष्टि से एक बार देखा। उसे मह हुआ, "दरवाजे पर हरखा खड़ी-खड़ी रो रही है। वह कह रही है का दरवाजा बन्द न करना, विदा के दूसरे दिन मैं इसे बन्द चाबी घर वाली को दे आऊँगी।"

"मास्टर घर से बाहर निकला, मग्गू! चौधरी के घर चल।

चौधरी ने पहले से ही बैलगाड़ी तैयार कर रखी थी। भी ने अपना सारा सामान हिसाब से गाड़ी पर लगा लिया था। चौ और चौधरानी के चेहरों पर रुंआसी झलक रही थी।

मास्टर के बैलगाड़ी के निकट पहुँचते ही सबने एक बार उ चरण स्पर्श किये। मास्टर का हृदय सौहार्द से भर उठा। स्नेह-बन्धन

टूटने में अब थोड़े ही क्षण थे। मास्टर ने सबको हाथ जोड़े। चौधरी ने उसको बाहों मे भर लिया।

"बेटा, हमें भूल तो नही जाओगे ?"

"चाचा, कहीं अपने आपको भूला जाता है।"

चौधरानी बीच में ही रुद्ध स्वर मे बोल उठी, "मेरे लाडेसर (लाडले) की भोलावण (जिम्मेदार) तुझे है बेटा, मैंने अपने भीटिये को अपनी आँखों से कभी भी दूर नहीं किया है। पराये धन को बड़ा सम्भाल कर रखा है।"

"आप चिन्ता न करें माँजी, मैं इसे अपने से अधिक सुखी रखूंगा।"

तब भीटिया ने चौधरानी के पाँव छूयें। चौधरानी का हृदय फट-सा गया। इतनी कठोर दिलवाली औरत को इतनी कोमल आज तक किसी ने भी नहीं देखा था। सब उसे आश्चर्य से देखने लगे।

"बेटा, जल्दी पाछो (वापस) आइये, मै तेरी अखियों मे प्राण लिए अडीक (प्रतीक्षा) करूंगी।"

चौधरी ने पाँव छूने पर आशीर्वाद दिया, "जुग-जुग जीवो, मेरे लाल, खूब यश और धन कमाओ और अपने घर वालो को सुख दो।"

गाड़ी चली।

बैलों की घटियाँ वेदना का संगीत गुंजरित करती हुई बज उठी।

थोड़ी दूर पर ढोलकी आँखो मे सावन-भादों लिए हुये खड़ी थी, एक खेजड़े के नीचे।

उसके होंठ फड़क रहे थे जैसे वे उच्चारित कर रहे हैं—

*पीया परदेशों मत जाव, अभी मृगानैणी बरजै छै थोंने है।

पीया परदेशों मत जाव...

परदेश रा मोमला रे ढ़ोला,

चलना है विषम उजाड़।

*विरह सम्बन्धी लोक-गीत। टेढ़े-मेढ़े रास्तों आदि का चित्रण है।

परधर वासो होजो थे ले ढोला मारू,
कुंए पूछेला थारी वात।
ऊभी मृगनैणी बरजे छं थोने,
हे पिया परदेशो मत जाव....

बैलगाडी गाँव के किनारे हो गई तो झीटिया ने ढोलकी को अपने आँचल से आँसू पोंछते हुए अन्तिम वार देखा।

गाडी चल रही थी। धूल की धुन्ध पीछे छाकर रास्ता धुंधला कर रही थी।

गाँव के अन्तिम छोर पर जहाँ भैरूं जी का छोटा-सा मन्दिर था, वहाँ हरखा खड़ी थी।

उसने बडी गम्भीरता से मास्टर की ओर न देखते हुए झीटिया से विनती की, "भैरूंनाथ बाबा के दरसन कर लो, उनकी आशीष से मन के सारे मनोरथ पूरे होंगे।"

मास्टर और झीटिया ने हाथ जोड़कर अपने-अपने ललाट पर सिन्दूर लगाया।

मास्टर हरखा की ओर उन्मुख हुआ, "क्या तू मुझसे बहुत नाराज है।"

"नही मास्टरजी, मैं किस जोर पर नाराज होऊँ। दुखियां विधवा हूँ। मेरी चाकरी मे कोई भूल रह गई हो तो माफ कर दीजिएगा।"

"तेरी सेवाओ को मैं कभी नहीं भूलूंगा।"

मास्टर का हृदय द्रवित हो गया।

हरखा ने उसके चरणो की धूल को अपने सिर पर लगा लिया।

गाड़ी चलती ही जा रही थी।

सूरज आकाश में तेज और तेज होकर चमक रहा था।

मास्टर और झीटिया दोनो इतने उदास थे कि जैसे किसी निर्मम

ने उनके हृदय की उल्लास-उमिओं के आगे कठोर चट्टान का टुकड़ा रख दिया हो।

गाड़ी चली जा रही थी। और मास्टर सोच रहा था। अत्यन्त ही गम्भीरता से सोच रहा था। सचमुच कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता ठीक ही कहते हैं–राजशाही की निरकुंशता और शोषण कई-कई जगहों पर अत्यन्त ही सुन्दर तरीके से है। आदमी मिठाई के भरोसे उसे खाता रहता है।

आज जब वह इस गाँव में शिक्षा के ज्ञान की ज्योति जगाने लगा और उसने राजा के इस आदेश के विरुद्ध अपने शिक्षक के धर्म को निभाया तो उसकी बदली का हुक्मनामा आ गया।

मास्टर जब गाँव में आया तब राज्य की ओर से कई प्राथमिक शालाएं खोली गई ताकि रियासत में ज्ञान की ज्योति जले, साक्षरता का प्रचार-प्रसार हो।

मानव-विकास के लिए साक्षरता पहली शर्त है। यही साक्षरता आगे चल कर अच्छी शिक्षा में परिवर्तित होती है और मनुष्य अपने अस्तित्व की पहचान करता रहता है। जब मनुष्य को अपने अस्तित्व की पहचान होती जाती है तब वह अपने अधिकारों के बारे में सोचने लगता है।

मास्टर इस गाँव में आया ही इसलिये था कि वह अपने कर्तव्य का सच्चाई से पालन करेगा।

उसे स्कूल निरीक्षक ने कहा था, "अन्नदाता का हुक्म है कि उनकी रियासत में शिक्षा का खूब प्रचार हो। आप तो जानते हैं कि हमारे प्रातः स्मरणीय अन्नदाता देश की बड़ी-बड़ी शिक्षा संस्थाओं के महत्वपूर्ण पदों पर हैं। वे चाहते हैं कि रियासत में शिक्षा का अधिक से अधिक प्रचार हो।"

और जब मास्टर गाँव के लिए रवाना होने लगा तो एक दूसरे शिक्षक ईश्वरदयाल गोयल ने आकर कहा, "नारायण!"

"जी।"

"मैं भी एक मास्टर हूँ पिछले पाँच सालों से। इस लाईन का मेरा पाँच सालों का कटु अनुभव है। मित्र! मास्टर एक पवित्र नाम है। वस्तुतः मास्टर चाहे वह किसी भी शाला, कॉलेज...... आश्रम......., संस्थाओं का हो, एक ऐसा सम्मानजनक नाम है कि उसे ईश्वर की तरह समझना चाहिए। उसका कर्तव्य परमात्मा से कम नहीं है। बच्चों को जीवन और जगत के लिए प्रयत्न ही सम्पूर्ण रूप में ढालना मास्टर का ही कर्तव्य होता है। वह साम, दाम, दंड भेद...... किसी भी नीति से बच्चे की मेधा का सही विकास कर देता है। उसे जीने के लिए योग्य बना देता है। उसे अपने अधिकारों के लिये लड़ना सीखाना चाहिए।......ताकि वह सही ढंग से जी सके।"

मास्टर ने लम्बा साँस लेकर कहा, "मैं आपका मतलब नहीं समझा आप कहना क्या चाहते हैं? मैं स्वयं एक मास्टर का कर्तव्य और धर्म दोनों समझता हूँ।"

ईश्वरदयाल ने उसके कंधे पर धीमे से हाथ रख दिया। उसके चेहरे पर एक फीकी मुसकान थी। उससे लग रहा था कि वह नारायण को अभी चालाक नहीं समझ रहा है। बुजुर्गाना अंदाज में वह बोला, "मैंने कब कहा कि तुम्हें अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं है! मैंने तुम्हे इतना बड़ा भाषण इसलिए दिया है कि तुम अपने कर्तव्य को विपरीत परिस्थितियों व डरावने वातावरण मे भी पूरा कर सको।"

"मैं अपने कर्त्तव्य को पूरा करूँगा।" मास्टर ने दृढ स्वर में कहा, "मैं आदर्श, नैतिकता और अधिकारों की लड़ाई भी लड़ना जानता हूँ।"

"पर मैं आपको एक विशेष गुप्त बात बताना चाहता हूँ जिसे आपको कोई भी नहीं बता सकता है। क्योंकि उसे प्रकट करने का

सीधा मतलब है कि नौकरी से हाथ धोना ……। और कौन बेवकूफ होगा जो पाई हुई सरकारी नौकरी को छोड़ना चाहेगा। इसके मूल मे एक बात है-परिवार।…… बीकानेर मे अधिकाश मास्टर व पढ़ा लिखा सबका बाहर का है……उत्तरप्रदेश का……क्यो है!…… और बीकानेर का आदमी रोजी-रोटी की तलाश मे देश के कोने-कोने मे चले गये हैं, वहा संघर्ष के साथ व्यापार किया है। बाहर के अधिकांश लोग नौकरी की तलाश मे इधर आये। आश्चर्य है कि इस इलाके मे मैट्रिक पास व्यक्ति भी बहुत ही कम हैं और बी. ए. व एम. ए. तो बस अंगुलियो पर गिनने लायक हैं।……क्यो ?…… इसके कारण पर कभी सोचा ? तुम तो राजतन्त्र की एक दूसरी रियासत से आये हो ?……वहाँ तो हर जाति का बराबर का विकास है…… और यहाँ केवल राजा के अपनी सात पीढ़ी के लोग ही क्यों पढ़े-लिखे हैं ! क्यों अच्छे पदो पर है ?……ढूंढो……कारण को ढूंढो……।" ईश्वरदयाल ने पीडा का लम्बा सांस लेकर फिर कहा, "इसके मूल मे कौन-सी दुर्भावना काम कर रही है—इस पर विचारो।"

मास्टर नारायण ने गम्भीर होकर कहा, "आप मेरे अग्रज हैं गोयल साहब !…… मैं आपसे स्पष्ट रूप से पूछना चाहूँगा कि असल बात क्या है। आपकी बात का मर्म क्या है ?"

मास्टर गोयल ने कहा, "मेरी बात का सार तत्व यह है कि—आपको विभाग की ओर से सकेत दिया जायेगा कि आप स्कूल को खोलें जरूर, पर छात्रो को पढ़ाने का कोई कष्ट न करें।……आज इस रियासत मे केवल सत्ताधारियों के लिए बने 'स्पेशल स्कूलों के अलावा कही भी पढाई-लिखाई है ही नहीं।"

"वाह ! यह तो दुरगी नीति है। लोगों के सामने आप जनता जनार्दन के उत्थान के ठेकेदार बने रहे और आप अत्यन्त ही सुन्दर ढंग से जनता को अज्ञान के अंधियारे मे डालते रहें। मैं इसके विरुद्ध

सकूंगा" मैं बच्चों को पढ़ाऊंगा। उनमें ज्ञान की ज्योति जलाऊंगा"।"

'फिर तुम्हारी नौकरी से जल्द ही छुट्टी हो जाएगी। इस गांव को तो मास्टर नाम का एक बुत चाहिए।"

और मास्टर जब गाँव आने लगा तो उसे वास्तव में प्रत्यक्ष ही सुघट भाषा में यह संकेत दे दिया गया।

पर मास्टर ने गाँव में आकर अपना कर्त्तव्य नहीं भूला था। वह बच्चों को सचमुच साक्षर करने लगा। पढ़ाने लगा।

यह प्रश्न सरकारी नीति का प्रकट रूप से विरोध था।

धीरे-धीरे इस बात का फैलाव होता गया। जब लालकुंवर को पता चला तो वह बड़ी ही आग-बबूला हुई।

उसने नारायण को बुलाया। उसकी आकृति कठोर थी और उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में हिंस्रता चमक रही थी।

मास्टर ने उसकी जड़ता के यथार्थ को समझते हुए कहा, "आपने मुझे किसी खास काम से याद किया है।"

"जी।" उसने कुर्सी पर बैठते हुए कहा।

"फरमाइए।"

"आप जब से गाँव में आये हैं तब से गाँव में बदलाव आने लगा है। यहां का आदमी जो भीगी बिल्ली बना रहता था, वह शेर की तरह गुर्राने लगा है।" आपको मालूम है कि हमारी शालाओं में पढ़ाना मना है पर आप सचमुच पढ़ाते हैं। क्या यह हमारे हुक्म का उल्लंघन नहीं?" बोलिए"।"

मास्टर ने गम्भीर स्वर में कहा, "हर अच्छे इन्सान का कर्त्तव्य है कि वह अपने आस-पास के लोगों को एक अच्छी जिंदगी जीने के उपाय बताएं, उन्हें एक मुक्त मानव का अहसास कराए।" यदि मैंने गाँव के लोगों में जागृति का मंत्र फूंका है तो कोई गलती नहीं की। मुझे पाठशाला में बच्चों को पढाने के लिए भेजा है। मुझे पढ़ाने का ही वेतन मिलता है, न पढ़ाने का नहीं।"

लालकुंवर ने भौहें चढ़ाकर कहा, "मैं आपकी भारी भरकम बातों मे उलझना नहीं चाहती । किंतु गांव के मालिक के खिलाफ जो आप बच्चों व गांव वालों मे भर रहे हो, क्या वह ठीक है ?"

"हाँ ठीक है ।"

"यह राजद्रोह नही है ।"

"नहीं, मैने कभी भी यह नहीं कहा कि ठाकुर सा की हत्या कर दो ...... या लालकुंवर बाई सा को मार दो। मैंने तो यह कहा कि हर मिनख-लुगाई अपना हक हासिल करें ।"

"इसका मतलब तो यही हुआ कि हमारी व्यवस्था के विरुद्ध बोलों ।...... मास्टर जी ! आप हद से ज्यादा बढ गये है ।...... आप या तो अपने आपको सही रास्ते पर लाइए वर्ना परिणाम सही नहीं निकलेगा ।"

और, फिर शिक्षा-विभाग के निदेशक से जो स्वयं एक राजवी सामन्त था-लालकुंवर मिली । उसने सारी स्थिति साफ-साफ बतलाई । उसने दीवानजी से कहा । इस तरह काफी सोच-विचार कर यही निश्चय किया गया कि मास्टर को वहाँ से बुला लिया जाय ।

और इस तरह मास्टर को गांव छोड़ना पड़ा ।

गाडी जा रही थी ।

धीरे-धीरे रिगचू.......रिगचू करती !

कोई ऊंटवाला शहर से लौट रहा था । वह अपने आप में खोया हुआ गा रहा था—

म्हांरो देस धोरां रो देस
सोने रो देस चांदी रो देस
इण रा बिणद् बखाणूं राज.......
इण नें सीस नवांवूं राज.......

मास्टर सोच रहा था कि हर आदमी को अपनी मिट्टी सबसे अच्छी लगती है ।

: १२ :

साहूकार की मौत के बाद कारिन्दों ने अपनी मनमानी करनी शुरू करदी । पहले एक कमाई था, अब दस कमाई पैदा हो गए। सूने घर में जिस प्रकार चूहे नाचने लगते है, उसी प्रकार ठाकुर के पागलपन के कारण हर कारिन्दा अपनी-अपनी करने लगा । हालांकि इस पर लालकुंवर अपना कठोर शासन करती थी पर वह खुले-आम गांव में घूम नहीं सकती थी । डेरे की मर्यादा का उसे हर समय ध्यान रखना पड़ता था ।

एक दिन चौधरी ने लालकुंवर के सामने शिकायत की कि यदि आपके कारिन्दे इस प्रकार जोर-जुल्म करते रहे तो हमे लाचार होकर आपकी शिकायत महाराज तक पहुँचानी होगी ।

लालकुंवर इससे गांव के किसानों के प्रति सहानुभूति के बजाय और घृणित हो उठी । बिगड़ गई । चौधरी को भी गुस्सा आ गया। उसकी दोनों मुट्ठियाँ बंध गईं, "बाई सा ! आपके कारिन्दों ने तो हमे कुत्ते की रोटी समझ रखा है कि जब चाहा नोच लिया। हमारे पाँच-पाँच हजार की लागत के कुंड अपने कब्जे मे कर लिए हैं। चमारों और भगियों के घर बेदखल कर लिए, पशुधन तो इस तरह गायब हो रहे हैं जिस तरह कपूर । रैयत पर यदि इस तरह के जुल्म होते रहे तो ठीक नहीं रहेगा ।"

चौधरी की बात कृष्णा ने भी सुनी ।

जब चौधरी सारा रोना रोकर चला गया तब दोनों बहिनों में ठन गई ।

कृष्णा फुत्कार उठी, "यह अन्याय है जीजी आखिर हमारे कारिन्दों को क्या अधिकार है कि वे हमारी रियाया पर जोर-जुल्म करें, वह भी हमारे बिना हुक्म के । मैं सब की खाल उधेड़ दूंगी । मैं ये सब सहन नहीं कर सकती ।"

बहिन ने बहिन की आंखों की द्रोह-भरी चिनगारियां पहचानी । गम्भीर होकर बड़प्पन से बोली, "जब बाड़ खेत को खाने लगती है तो उस खेत का सर्वनाश होकर ही रहता है । जब तू ही सुलगती हुई चिनगारियों में फूंक मारेगी तो आग भड़कने से रोकेगा कौन ?"..........

.... कृष्णकुंवर ! शासन बिना हिंसा, बिना कोप और बिना आतंक के नहीं चलता है । प्रजा के प्रति प्रेम दिखाने का मतलब यह है कि राजा कमजोर है ।"

"लेकिन आप भी औरों की तरह निरकुश बन जाएगी तो इन गरीबों का कौन रहेगा ?"

"जिसका कोई नहीं होता है, उसका भगवान होता है ।"

"और जिसका भगवान हो जाता है, उसको कोई मिटा नही सकता ?"

लालकुंवर को तर्क अच्छे नही लगे । उसने कुपित होकर कहा, "देखो कृष्णकुंवर, जागीरी के मामले में अपनी टांग मत अड़ाया करो । अपने काम से मतलब रखो, समझी ।"

"जीजी सा ।"

"मैंने कह दिया न, यह जागीर का मामला है, और तुम्हे जागीर के प्रबन्ध का क-ख-ग भी नही आता ।"

"मैं केवल इतना जानती हूँ कि जुल्म की जड़ सदा हरी नहीं रहती, इसका परिणाम बहुत बुरा होगा ।"

"परिणाम !" लालकुंवर बड़बड़ाती हुई चली गई ।

कृष्णा जल-भुनकर खाक हो गई । उसके बोल तो यहाँ पानी के

मोल बिकते । कोई उसे नहीं पूछता । उसके अधिकार की कोई कीमत नहीं । किसानों पर अत्याचार-पर-अत्याचार हो रहे हैं । जैसे देव वैसे पुजारी ! और कृष्णा के कानों में महाराज की थोथी घोषणा के शब्द और प्रजा के प्रति हृदय विह्वल करने वाली वाणी गूंज उठी, "मैं कभी स्वेच्छाचारी नहीं बनूंगा । धर्म-शास्त्रों मे बताए हुए सच्चे राज धर्म का पालन करूंगा । उसमे प्रतिपादित सिद्धांतों का महत्वपूर्ण नीति के रूप मे पालन करूंगा । उन्होंने आठ सिद्धांतों का निर्माण किया था । उनमे उस प्रजावत्सल महाराज का आठवां सिद्धांत यह था—ऐसे उपकारी राजा का इन्तजाम हो, जो प्रजा की भलाई करने वाला है और प्रजा के लिए सन्तोषकारक है और जिसमें हर तरह से सोचविचार करने के बाद राज्य की मौजूदा हालतों को ध्यान मे रखते हुए राजसभा, लोकल बोर्ड, म्यूनिसिपैलिटियां और दूसरी ऐसी सभाओ की मार्फत, जिनमें चुनाव किया जाता है, राज के कामो मे प्रजा को दिन ब दिन अधिक शामिल किया जाय।"

इतनी उदार घोषणा अंग्रेजों के पांवो की जूती सहलाने वाले, जागीरदार, जमींदार, पट्टेदार पोषक राजाजी ही कर सकते हैं। उसी समय जन जाग्रति के अग्रदूत, चेतना के सजग प्रहरी, उन सभी देश-भक्तो की मूर्तियां कृष्णा की आंखों के सामने नाच उठी और नाच उठी न्याय की चीखती, झूठ मे तड़पती हुई आत्मायें । फिर अभियुक्तो को वर्षों का कठोर कारावास का दण्ड दे दिया गया ।

कृष्णा के तन मन में हजारो चीटियों के काटने की मार्मिक पीड़ा हुई । भावावेश मे वह व्याकुल हो उठी । उसकी आंखो के सामने एक विचित्र-सा दृश्य घूम उठा । एक ऊंची कोर के बड़े बर्तन मे एक बड़ा बिच्छू जो अपने हिंस्र डंक के कारण निर्भय होकर घूम रहा है, उसने देखा निर्भय घूमते हुए बिच्छू मे नरेश का प्रतिबिम्ब झलक रहा है । देखते-देखते उस बिच्छू के आस-पास बहुत से छोटे

बिच्छू घूमने लगते हैं और भूख की पीड़ा से वे बड़े बिच्छू पर टूट पड़ते है। थोड़े ही काल मे कई छोटे बिच्छू एक बड़े बिच्छू को खा जाते हैं।

कृष्णा के चेहरे पर आकुलता के कारण श्वेदकण उभर आये। उसने अपनी आँखें बन्द कर ली।

× × ×

गाँव का प्रबन्ध दिन व दिन अराजकता की ओर बढ़ने लगा। लालकुँवर ने एक बार उसका नया प्रबन्ध और करना चाहा। कृष्णा की तबियत अब ऊबी हुई थी अतः वह वापस शहर चली गई, लालकुँवर के लाख मना करने पर भी जब वह जा रही थी तब लालकुँवर को अपने डेरे की दीवारें टूटती हुई दीख पड़ी।

अपने आप से काफी विचार-विमर्श करने के बाद लालकुँवर ने अपने गाँव का प्रबन्ध चुपके से अपने रिश्तेदार ठाकुर मोपसिंह को सौंप दिया।

ठाकुर मोपसिंह की ओर से सुजानसिंह, उसका फुफेरा भाई गाँव में आ गया।

: १३ :

शहर में आये भीटिया को आठ माह हो रहे थे।

इन आठ माह मे उसने शहर की जनता में जो जागृति और उद्बोधन की लहर देखी जिससे उसे देश व प्रजा के स्वर्णिम भविष्य की सुन्दर कल्पना हो गई। उसे गीली लकड़ी के धुएं से घुटते हुए अपने यौवन मे एक नए स्वस्थ-वातावरण का भास हुआ। अन्धकार से

ग्रावेष्टित परिधियो मे सहस्त्र प्रकाश स्तम्भो की ग्राभा के दर्शन, सूर्य
किरणों की ज्योति, पवित्रता, सजलता एक विचित्र ग्रनुभूति ।

वह मास्टर से प्राय: सन्ध्या के समय ग्राकर खादी भन्डार पर
मिल लेता था जहाँ जन-नेताग्रो द्वारा जनता के प्रत्येक ग्रान्दोलन का
रूप बाधा जाता था, जहां जनता के सेवक निरंकुश राजसत्ता व
सामन्तशाही गढ की ईंट-ईंट उखाड़ने की योजनाये बनाया करते थे।
वह खादी भन्डार मे जन-नेताग्रो मे श्री मघाराम वैद्य, दाऊदयाल
ग्राचार्य, रघुवरदयाल गोयल, श्री लक्ष्मीदास स्वामी, गगादास कौशिक
देवीदत्त पत ग्रादि को वह बडी श्रद्धा के साथ देखता था ।

बाबू मुक्ताराम वकील को वह देवता के नाम से पुकारता था
जिन्हे हिन्दू काशी विश्वविद्यालय के चाँसलर गगासिह ने निर्वासित
दिया था । उनका कसूर था कि उन्होने जनता में चेतना फैलाने का
दुस्साहस किया । उन्होने वाचनालय-पुस्तकालयो की स्थापना की, उन्होने
देश के उत्थान के लिए जन-जीवन प्रेरक नाटक खेले ।

इन सब से सर्वोपरि मानता था, ग्रपने मास्टर जी को । ग्रपने
जीवन का सर्वस्व ग्रर्पण करने वाले मास्टर के ग्रनुकम्पा भरे करो की
छाया मे वह ग्रपनी बुद्धि का विकास कर रहा था । वह हर रात
मास्टर के घर जाता था, पढता या लिखता था ग्रौर देश की गतिविधि
के बारे मे जानने का प्रयत्न किया करता था ।

मास्टर उसे हिन्दी की परीक्षा मे सम्मिलित कर रहे थे । पढ़ने
की उसकी भी हार्दिक इच्छा थी ग्रौर इसी हार्दिक लगन मे उसने
समय उसके मन से ढोलकी तक को भुला दिया था । वह ग्रपने
मे भूत की विस्मृति करने लगा ।

रात हो गई ।

सडको पर सामन्तशाही तथा राज-सत्ता की तरह ग्रन्तिम साँस
लेती हुई सरकारी बत्तियाँ जल रही थी । झोटिया चला जा रहा था ।

उसके पीछे एक आदमी बहुत दूर से चला आ रहा था। वह सी.आई.डी. था। जैसा उस समय प्रत्येक सजग व्यक्ति के पीछे राजसत्ता का भूत चिपका रहता था, फिर भला भींटिया कैसे बच सकता था?

लगभग आठ बजे वह मास्टर जी के पास पहुँचा।

मास्टर जी ने एक लेख तैयार किया था। 'बीकानेर में प्रजा की हड्डियों पर राजा व सामन्तों के गढ़।" यह लेख वे लोक नायक राजपूताना हृदय सम्राट श्री जयनारायण व्यास द्वारा सम्पादित साप्ताहिक में प्रकाशनार्थ भेजना चाहता था। मास्टर ने लिखा था—

प्रजा की हड्डियों पर राजसत्ता के गढ़ बन तो जरूर सकते है पर उनके ठोसपने व घमंड की सम्भावना बहुत कम अंशों में है। बीकानेर की शासन सत्ता प्रजा के हित में शताश भी नहीं है। जितने भी पूंजीपति हैं वे सब-के-सब प्रवास कर रहे हैं जिससे नगर का औद्योगिक विकास भी रुका हुआ है।

लेकिन इन पूंजीपतियों का सामन्तवाद से बहुत ही सुन्दर दुरहे-हित वाला गठ-बन्धन है। प्रवास में लाखों रुपये का उपार्जन करने के बाद ये पूंजीपति समय-समय पर नजर आते हैं। यह समय राजकीय उत्सव, त्योहार और सगाई आदि का होता है। तब राजा लोग इनसे गले मिलते हैं। इन्हें अपनी स्वामी भक्त प्रजा कहते हैं और इन्हें राजे दरबारों में बुलवाकर मुजरे में बहुत-मात्रा में पूंजी और पाँवों में सोने के कड़े, छड़ी या राजा, अथवा ऐसी ही अन्य उपाधियाँ दे दिया करते हैं। सत्ताधारियों को पूंजीपतियों से पर्याप्त दौलत मिलने के बाद वे उक्त राजस्थानियों की दिलचस्पी बीकानेर के विकास की ओर उन्मुख नहीं कर पाते जिससे प्रजा की उन्नति रुकी हुई है और बेकारी का अन्त नहीं हो पा रहा है।

जनता में सम्वत् 1998 की घोषणा की धारा 32 और 33 से बड़ा ही असन्तोष एवं राज्य की मनोवृत्ति के प्रति क्षोभ है जिसमें

महाराजा ने स्वयं अपने श्री मुख से उमरावों, सामन्तों, पट्टेदारों, ठाकुरों व जागीरदारो को राज्य के थम्भे (खम्भे) और राज्य सिंहासन का आभूषण कहा । जनता का शोणित चूस-चूसकर कुन्दन की तरह लाल होकर तमतमाने वाले बीकानेर नरेश को यह कभी भी विस्मृति नही करनी चाहिये कि राज्य-सिंहासन के आभूषण मुट्ठी भर जागीरदार नही जनता की अजय शक्ति है—किसान और मजदूर।

आगे उन्होंने उमरावो, सरदारों एवं ठाकुरों को सम्बोधित करते हुए उन्हें भी *अपना फर्ज बताया कि वे :*

—श्याम धर्मीपरा मे कसर नही घालसी
— जिला वाथरो कई सू नहीं राखसी
—हुक्म अदूली नही करसी
—रैय्यत सू जुल्म जासती नही करसी
—गाँव आबाद राखसी
—रकम हिसाब लेवसी
—गाँव मे चोर धाड़वी नही बसासी
—चोर धाड़वी आसी तो पकड़ाय देसी ।

लेकिन जागीरदारो ने केवल उन्ही कर्त्तव्यो का पालन किया राज्य-हित से सम्बन्धित हैं, शेष तो उनकी अपनी बात है । अब गांवो मे अन्धेरगर्दी बढ़ती जा रही हैं, किसान त्रस्त हो रहे उनके खेत, उनके कुवें, उनके मौरूसी मकान सब-के-सब जागीरदारो धांधली के शिकार हुए जा रहें है, वे शहर आते है, महाराज प्रार्थना करते है, अपराधियों को दंड देने की मांग करते है । कह हैं कि गांव की पुलिस उनकी बहू-बेटियो के साथ जबरदस्ती कर लेत है । जब जो चाहा उन्हें छेड़ लेती है । उनकी आवाज की को *कीमत नहीं । जन-नेताओं के संगठन को पराजित किया* रहा है ।

कल शहर में मेला होगा । भींटिया भी जाएगा । लोक-उत्सव में सम्मिलित होने की भावना का उद्भव स्वतः ही होता है।

चार बजे से शहर का जन-समूह गढ़ की ओर मुड़ने लगा। स्त्रियों के झुण्ड-के-झुण्ड विभिन्न भाँतिस भोडें मधुर स्वर में गाती जा रही थी। उनके स्वर में मादकता थी। लाल-पीले-नीले-आसमानी गुलाबी कसूम्बी-ओढ़रे और उन पर चमकते हुए कनार के बेल बूंटे। उन सब में राजस्थानी रमणियों का अप्रतिम सौंदर्य छलकते हुए अतुल की भाँति। स्वर गूँज रहा था।

मेलण दो गणगोर गाढ़ा रे मारू। मेलण दो गणगोर।
होजो म्हाँ ने गवरया रो घणो चाव, गाढ़ा मारू मेलण दो गणगोर
माथे रे महमंद, लाव गाढ़ा रे मारू, माथे री फोणदा लई
होजी म्हारे बिन्दगी मौज लगाव, गढा रे मारू"

गीत में सगीत दे रही थी, उन रमणियों के पायल की झंकार और कदमों की आवाज।

गढ के समीप जो चौतीने का कुँआ था। उस पर राजाजी की गवर अपने पूरे लश्करिये के साथ आने वाली थी। फौज, बैंड राजवी सरदार, सामन्त, उमराव, पट्टेदार, यहाँ तक कि राज्य के तवायफें भी।

उस दिन जूनेगढ में प्रजा-प्रवेश खुला रहता था। भींटिया भी गया। सिर पर टोपी पहने थे। नंगे सिर गढ में जाना मना था। प्रजा के अपार जन-समूह के साथ उसने भी गढ़ की कलात्मक दीवारें देखी जिनमें गुलाम अपना बचपन यौवन और बुढ़ापा बिना किसी विरोध के बिता देते हैं। उन्हें यह भी पता नहीं लगता कि वे कब पैदा हुये और कब मरे ?

गढ़ के मन्दिर में देव-पूजन हो रहा था।

ठीक समय पर गवर माता की सवारी निकली। यह गवर भी ऐतिहासिक महत्व रखती है।

इतिहास कहता है कि जोधपुर के राजा जोधेजी के वीर पुत्र राव बीका ने जाटों के इस देश को छीनकर बीकानेर राज्य की नींव डाली और बाद में जोधपुर और बीकानेर में भारी वैमनस्य उत्पन्न हो गया। स्वार्थों के सम्मोह में समस्त सम्बन्धों को त्याग कर वे एक-दूसरे पर आक्रमण करने लगे।

यही वजह है कि हमारे राजाओं की गवर जोधपुर से लूटकर लाई हुई है।

गणगौर का पर्व ही एक कीर्ति का स्तम्भ है। जोधपुर के राजाओं के गर्व को चूर करने के लिए इसका हर वर्ष प्रदर्शन किया जाता है।

भींटिया गढ़ के बाहर आकर घूम रहा था।

छतों, सड़कों एवं पेड़ों पर भी जन समूह था। वह पब्लिक-पार्क की चाहर-दीवारी पर बैठे जन-समूह का अवलोकन कर रहा था। देखता-देखता वह पार्क में घुस गया।

कई महिनों के बाद आज वह पार्क में आया था। गढ़ की दूर्ग तोल से निकले ऊंट के बजते नगाड़ों ने अपनी बेसुरी धड़ड़-धड़ड़ ध्वनि से एलान कर दिया था कि सवारी निकलने वाली है।

भींटिया को केवल प्रजा-वत्सल नरेन्द्र शिरोमणि के दर्शन करने थे। मेले को वह देख चुका था। गीतों को वह सुन ही चुका था। अब, अब तो उसे देखना था, राजा जी के मुखमण्डल को।

नगाड़े की बढ़ती हुई आवाज ने उसे चौकन्ना कर दिया। वह कदम बढ़ाता हुआ कुवे की ओर चला। कुवे के सामने बड़ी भीड़ थी। वहाँ झूले डाले हुए थे जिनमें स्त्री पुरुष झूल रहे थे, बच्चे कागज के बने खिलौने खरीद रहे थे और ढोल (नुगारे) बजा रहे थे।

वह भी दर्शकों की पाँत में खड़ा हो गया।

सवारी आती रही। अन्त में हाथी के ओहदे पर राजा जी बैठे थे। एक व्यक्ति उन पर चवर डुला रहा था।

प्रजा गगन-भेदी नारों से राजा जी की जय-जयकार कर रही थी।

"घणी घणी खम्मा अन्नदाता नैं!

खम्मा अन्नदाता नै !!

खम्मा अन्नदाता नै !!!

भीटिया ने 'खम्मा' नहीं किया।

वह भी तो जाट था, उसी के पुरखों की धरती पर अधिकार कर स्वामी बन जाने वाले राजाओं की वह जय नहीं बोल सकता। वह उस राजा के मंगल की कभी भी कामना नहीं कर सकता जो जनता के जागरण को अपनी तिरकुशता से समाप्त करना चाहता है जिसका कर्म इतना सकुचित हो कि उसमे केवल अपने आपको ही पनपाने की शक्ति हो, वह भी अन्याय अत्याचार के सहारे। वह उस राजा को केवल मुँह में राम बगल मे छुरी ही कह सकता है।

उसने राजा जी को सिर नहीं नवाया। चुपचाप वह वहाँ से हटकर थोड़ी दूर एक पेड़ के नीचे आकर खड़ा हो गया।

चौतीने कुवे के पानी से गवर-माता ने अपनी प्यास बुझाई इसके बाद फिर गवर माता की जय-जयकार के बाद सवारी ने पुन गढ़ की ओर प्रस्थान कर दिया।

जोर का हल्ला-गुल्ला हुआ।

भीटिया ने देखा—"बहुत सी नारियाँ जो अपने सिर पर गवर माताओं की लकड़ी की बनी मूर्तियाँ लिए हुए हैं, इस मुद्रा में खड़ी हैं, जैसे वह दौड़ करेंगी।"

हुआ भी ऐसा ही।

तमाम स्त्रियां सिर पर गवर माता को उठाकर भागीं। भीटिया हँस पड़ा। उसके साथ भीड़ भी भागती गई। आवाज़ आ रही थी, "रास्ता

छोड़ दो. भरे भाई हट न""छोड़ दो रास्ता, हट जा, ए छोकरी"।"

भौंटिया मन-ही-मन मुस्कराता सुस्ताने के लिए वापस पार्क में आकर बैठ गया।

दूब की सौंधी-सौंधी सुगंध आ रही थी। बेर की बोटियों की खड़खड़ाहट भी धीमे-धीमे गूंज रही थी। कुछ व्यक्ति इक्के-दुक्के पार्क में बैठे थे।

एकाएक भौंटिया के सामने वाली दूब के आगे एक मोटर आकर रुकी। भौंटिया की आँखें उस ओर उठ गईं।

एक प्रौढ़ महिला जिसके रहन-सहन पर पश्चिम-पूर्व का सुन्दर मिश्रण था, हाथ में छोटा-सा टोमी कुत्ता लिये उतरी। उसके साथ एक और सादे भेष में एक युवती उतरी।

भौंटिया उस युवती के चेहरे को देखने के लिए उत्सुक हो उठा। वह बेचैनी से उस ओर आँखें जमाये हुए था कि उस युवती ने उसकी ओर देखा।

भौंटिया सन्न रह गया "अरे, यह तो कृष्णाकुंवर है।"

पर कृष्णा ने उस ओर नहीं देखा। अब वह कृष्णा को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये एक बार उठा और अपनी धोती से काँटा निकालने का झूठा बहाना कर वापस बैठ गया। कृष्णा ने तो भी उसकी ओर नहीं देखा। वह बड़ा निराश हुआ, "क्यों नहीं, कृष्णा मेरी ओर देख रही है?"

अचानक कृष्णा ने उसकी ओर देखा। बदले हुये भौंटिया को पहचानने में देरी जरूर हुई पर वह उसे भूली नहीं थी।

कृष्णा ने पुकारा, "भौंटिया!"

भौंटिया के चेहरे पर प्रसन्नता के सहस्त्रों सूरज चमक उठे।

"आओ न।"

अब उसकी बुआ का ध्यान अपनी भतीजी पर गया। उसके फूले हुए नथुने और अधिक फूल गये। भृकुटियाँ थोड़ी-थोड़ी तन गईं।

"यह कौन है ?"

"बुआजी, यह झींटिया है ?"

"झींटिया !" उसने घृणा से मुँह बिचकाया, "यह क्या जानवरों जैसा नाम है ?" प्रौढ़ महिला ने भड़क कर कहा ।

"बुआजी, यह तो हम इसे चिढ़ाने के लिए कहती हैं।" झींटिया उनके सन्निकट आ गया था, "वैसे इसका नाम सूरज है सूरज, क्यों झींटिया ?"

झींटिया इतनी देर में कुछ सोच-समझ नहीं पाया। कह उठा, 'हाँ।

"सूरज, तब तो नाम सुन्दर है, मुझे हर गन्दी चीज से घृणा है। चाहे वह नाम हो अथवा वह कोई चीज ।" बुआ ने अपने हृदय के भाव व्यक्त किए ।

झींटिया किंचित उपहास से बोला, "अगर कोई आदमी काला हो तो ?"

"मैं उससे भी घृणा करती हूँ ।" तमककर बुआ ने कहा ।

"अगर आप खुद काली होती तो ?"

"तो मैं अपने आपसे घृणा करती ।"

"देखिए बुआजी, यह बात मैं मानने को तैयार नहीं हूँ । हर आदमी अपने से तभी घृणा करता है जब उसने अपनी आत्मा को धोखा दिया हो, उससे अनुचित छल किया हो अन्यथा काले-गोरे रंग से कोई अपने आपसे घृणा नहीं करता । अपने आपसे प्रेम करना हमें प्रकृति जन्म से ही सिखा देती है । क्या काले प्राणी अपने सौन्दर्य पर मुग्ध नहीं होते?" बुआजी ! जायो सो वालो ! मेरे कहने का मतलब है कि यदि आपने काले बेटे को जन्म दे दिया है तो आपको प्यारा ही लगेगा।

कृष्णा विमोहित हो उठी । झींटिया का एक-एक शब्द उसके मस्तिष्क में प्रभाव कर रहा था। दंभ की हल्की रेखायें उसके मुख पर दौड़ रही थीं ।

बुआ ने एक बार गौर से झौटिया को सिर से पाँव तक देखा—पाँव में मोटी सी चप्पल, मोटी-सी धोती, उस पर महीन कपड़े का कुर्ता, सलोना मुख, बंगला परम्परा के कटे बाल। सुघड़ युवक, आकर्षक नाक-नक्शे।"

"स्वभाव के बड़े तेज हो। तर्क तो खूब ही करते हो?" बुआ ने पूछा।

"शहर की हवा ही ऐसी है। बड़ी-बड़ी विचित्र खोपड़ियों से मिलने का अवसर मिलता है न, कोई ज्यादा बोलता है तो कोई कम, कोई एक दूसरे को शिकायत करना ही अपना धर्म समझता है तो कोई मानव-मात्र की सेवा करना ही अपना परम-कर्त्तव्य मानता है। मनुष्य ऐसे वातावरण में रहकर यदि स्वभाव का तेज न बने तो फिर मैं आसानी से कह सकता हूँ कि उसमें मनुष्य की साधारण क्षमता भी नहीं है।"

कृष्णा ने भी अपना मौन तोड़ा, "झौटिया।"

"कृष्णा, तुम तो सभ्य-समाज में रहने वाली हो, कम-से-कम इस भद्रजन को अच्छे नाम से तो पुकारा करो।" बुआ ने कृष्णा को टोका।

"सूरज, इतने महीनों से यहाँ रह रहे हो, और हमें खबर तक नहीं।" कृष्णा के स्वर में उलाहना था।

झौटिया बेहकी की हँसी हँस पड़ा, "खबर देने की आवश्यकता ही नहीं समझी, सच तो यह है कि मुझे आपका पता ही मालूम नहीं था।"

कृष्णा ने झट से कहा, "अब तो पता ले लो।"

"हाँ-हाँ, ले लो। हमारे डेरे आया करो, तुम तो बड़े दिलचस्प आदमी हो।" बुआ ने अपनी छोटी-छोटी कबूतरी-सी गोल आँखें मटका कर कहा।

"आऊँगा।"

बुआ ने भीटिया को पता दे दिया।

कृष्णा तुरन्त भीटिया के समीप गई, "सूरज !"

"नाम क्यों बदलती हो, कृष्णा ?"

भीटिया की आँखों में भावुकता तैर उठी। कृष्णा के स्वर में दबा हुआ दुःख था, "सूरज अच्छा नाम है ? फिर बुआ को भी पसन्द है। देखो सूरज, मैंने लालकुंवर से झगड़ा कर लिया। अब मैं शायद वहाँ कभी भी नहीं जाऊँगी। वह तो दिन-प्रतिदिन मनुष्यता से परे होती जा रही है।"

"फिर भी वह तुम्हारा घर है और क्या घर कभी छोड़ा जाता है ?" उसकी आँखों में प्रश्न बोल उठा।

'मुझे अत्याचार पसन्द नहीं। मनुष्य-मनुष्य का गुलाम बनकर रहे, यह मेरा हृदय सहन नहीं कर सकता। झूठी मान और शान के पीछे अपने महत्त्वपूर्ण जीवन का बलिदान मेरा अन्तःकरण स्वीकार नहीं कर सकता। मैं अपनी समस्त इच्छाओं व लालसाओं को कुंठित होते नहीं देख सकती। लालकुंवर की तरह जीवन को डेरे की ऊँची दीवारों में घुटाकर, झूठे अहम् के चक्कर में अपनी कोमल भावनाओं को नृशंस नहीं बना सकती। विशेषतः डेरे की स्थितियां मर्यादा की रक्षा थोड़े ही करती हैं बल्कि वे तो मर्यादा का शोषण करती हैं।' कृष्णा लगातार कहे जा रही थी। बुआ बाग में खिले हजारे के पीले फूल से खेलने का प्रयास कर रही थी। उसकी कोमल पखुड़ियों पर अपनी मोटी किन्तु मुलायम अंगुलियाँ फेर रही थी।

"तो तुम्हें गुलाम सी जिन्दगी पसन्द नहीं है।" भीटिया उसकी आँखों की गहराई को पहचान रहा था।

"नहीं।"

"फिर तुम्हें हम जैसे गरीबों के सरल और संघर्षशील जीवन से

पहिए करना चाहिए। कृष्णा ! सच तो यह है कि हमारी और तुम्हारी जीवन-पद्धतियों मे परस्पर मेल सम्भव नहीं।"

कृष्णा चौंक उठी, "क्या कहा ?"

"मजदूर और मालिक, किसान और ठाकुर का मेल सम्भव नहीं। हराम की रोटियाँ खाने वाला हाड़ को तोड़कर मेहनत-मजदूरी नहीं कर सकता। मास्टरजी कहते थे—"ये जागीरदार हर तरह से किसानों के शोषण के तरीके अपनाते है जिससे उनका आर्थिक विकास न हो। वे अपनी शक्ति से उनके संगठन व आन्दोलन को कुचलने की भरसक चेष्टा करते हैं ताकि वे एकता की अजेय शक्ति मे एकजुट न हो। जब वे इन दो चेष्टाओं में विफल हो जाते है तो वे खेतिहरों के संगठन को छिन्न-भिन्न करने में अपनी बुद्धि दौड़ाते है। यह बुद्धि हममें फूट के बीज बोने का प्रयास करती है। हर वर्तमान खेतिहरों के लिए शुभ भले ही न हो पर आने वाला कल निश्चित रूप से इन्हीं खेतिहरों का है। जिस प्रकार आज हम सत्याग्रह व आन्दोलन करते हैं उसी प्रकार उस समय ये जागीरदार अपने सड़े गले तत्वों को पुनर्जीवित करने के लिए इन्हीं रास्तों को अपनायेंगे। उस सड़ी लाश को जिन्हें दरअसल फूंकना ही देना चाहिए पर वे उसे लेकर घूमेंगे। अपनी शक्तियों को विकास की ओर न लगाकर नाश की ओर प्रेरित करेंगे। मतलब यह है कि इनका भविष्य अन्धकारमय है।"......कृष्णा ! मास्टरजी के कथन में उनका महान विश्वास झलकता है, चरम आस्था के दर्शन होते हैं इसलिए यह सत्य है।"

कृष्णा सोचने लगी, "यह गाँव का झोंटिया कितना बदल गया? भोला-भाला, नटखट, अनपढ़ यह झोंटिया जीवन के विषम-से-विषम पहलू से परिचित होकर नये युग के आगमन के आमन्त्रण में शरीक हो रहा है।" वह अपने भावों को अन्तर मे ज्यादा देर तक छिपा न सकी। उन्हें प्रकट कर ही दिया, "तू कितना बदल गया है!"

"आऊँगा ।"

बुआ ने झोंटिया को पता दे दिया।

कृष्णा तुरन्त झोंटिया के समीप गई, "सूरज !"

"नाम क्यों बदलती हो, कृष्णा ?"

झोंटिया की आँखों मे भावुकता तैर उठी। कृष्णा के स्वर में दबा हुआ दुःख था, "सूरज अच्छा नाम है ? फिर बुआ को भी पसन्द है। देखो सूरज, मैंने लालकुँवर से झगड़ा कर लिया। अब मैं शायद वहाँ कभी भी नही जाऊँगी। वह तो दिन-प्रतिदिन मनुष्यता से परे होती जा रही है।"

"फिर भी वह तुम्हारा घर है और क्या घर कभी छोड़ा जाता है ?" उसकी आँखो मे प्रश्न बोल उठा।

'मुझे अत्याचार पसन्द नहीं। मनुष्य-मनुष्य का गुलाम बनकर रहे, यह मेरा हृदय सहन नहीं कर सकता। झूठी मान और शान के पीछे अपने महत्वपूर्ण जीवन का बलिदान मेरा अन्तःकरण स्वीकार नही कर सकता। मैं अपनी समस्त इच्छाओं व लालसाओ को कुंठित होते नही देख सकती। लालकुंवर की तरह जीवन को डेरे की ऊँची दीवारो मे घुटाकर, झूठे अहम् के चक्कर मे अपनी कोमल भावनाओं को नृशस नहीं बना सकती। विशेषतः डेरे की स्थितियां मर्यादा की रक्षा थोड़े ही करती हैं बल्कि वे तो मर्यादा का शोषण करती है।" कृष्णा लगातार कहे जा रही थी। बुआ बाग में खिले हजारे के पीले फूल से खेलने का प्रयास कर रही थी। उसकी कोमल पंखुडियो पर अपनी मोटी किन्तु मुलायम अगुलियाँ फेर रही थी।

"तो तुम्हे गुलाम सी जिन्दगी पसन्द नहीं है।" झोंटिया उसकी आँखो की गहराई को पहचान रहा था।

"नही।"

"फिर तुम्हे हम जैसे गरीबों के सरल और संघर्षशील जीवन को

ग्रहण करना चाहिए । कृष्णा ! सच तो यह है कि हमारी और तुम्हारी जीवन-पद्धतियों में परस्पर मेल सम्भव नहीं ।"

कृष्णा चौंक उठी, "क्या कहा ?"

"मजदूर और मालिक, किसान और ठाकुर का मेल सम्भव नहीं। हराम की रोटियाँ खाने वाला हाड़ को तोड़कर मेहनत-मजदूरी नहीं कर सकता । मास्टरजी कहते थे—"ये जागीरदार हर तरह से किसानों के शोषण के तरीके अपनाते हैं जिससे उनका आर्थिक विकास न हो। वे अपनी शक्ति से उनके संगठन व आन्दोलन को कुचलने की भरसक चेष्टा करते हैं ताकि वे एकता की अजेय शक्ति में एकजुट न हों। जब वे इन दो चेष्टाओं में विफल हो जाते हैं तो वे खेतिहरों के संगठन को छिन्न-भिन्न करने में अपनी बुद्धि दौड़ाते हैं । यह बुद्धि हममें फूट के बीज बोने का प्रयास करती है । हर वर्तमान खेतिहरों के लिए शुभ भले ही न हो पर आने वाला कल निश्चित रूप से इन्हीं खेतिहरों का है। जिस प्रकार आज हम सत्याग्रह व आन्दोलन करते हैं उसी प्रकार उस समय ये जागीरदार अपने सड़े गले तख्तों को पुनर्जीवित करने के लिए इन्हीं रास्तों को अपनायेंगे । उस सड़ी लाश को जिन्हें दरअसल दफना ही देना चाहिए पर ये उसे लेकर घूमेंगे । अपनी शक्तियों को विकास की ओर न लगाकर नाश की ओर प्रेरित करेंगे । मतलब यह है कि इनका भविष्य अन्धकारमय है ।" ...... कृष्णा ! मास्टरजी के कथन में उनका महान विश्वास झलकता है, चरम आस्था के दर्शन होते हैं इसलिए यह सत्य है ।"

कृष्णा सोचने लगी, "यह गाँव का भौंटिया कितना बदल गया? भोला-भाला, नटखट, अनपढ़ यह भौंटिया जीवन के विषम-से-विषम पहलू से परिचित होकर नये युग के आगमन के आमन्त्रण में शरीक हो रहा है ।" वह अपने भावों को अन्तर में ज्यादा देर तक छिपा न सकी । उन्हें प्रकट कर ही दिया, "तू कितना बदल गया है ?"

"ग्रौर तू भी तो।"

कृष्णा की ग्रांखें शर्म से झुक गई। रुकती–रुकती पूछ बैठी, "कल जरूर ग्राग्रोगे ?"

बुग्रा समीप ग्रा गई थी। कृष्णा को पकड़कर बोली, "यह भाग, थोड़े ही रहा है, कल डेरे ग्रा जायेगा, चलो।"

कृष्णा के मन पर बोझ-सा पड़ गया।

: १५ :

चौधरी ने ढोलकी के सिर पर हाथ फेरकर सांत्वना-भरे स्वर में ग्राश्वासन दिया, "भोटिया, ग्रगले सावन तक ग्रा जाएगा, तू मुंह न उतार, बेटी ! तेरा धणी जाट गँवार न होकर समझदार हो इसलिये ही तो मैंने उसे शहर भेजा है ग्रौर बारह महीने तो ग्रंगुलियों की रेख पर गिनकर बिताये जा सकते हैं।"

ढोलकी का रोना बंन्द नहीं हुग्रा। वियोग की घड़ियाँ उसे पहाड़-सी लगने लगीं। एक साल के तीन सौ पैंसठ दिन गिनने के लिये उसने ग्रपने घर की दीवार पर काली लकीरें खींचनी शुरू कर दी। हर रोज भोर के तारे को श्रद्धा से हाथ जोड़कर कोयले की खींची लकीरों में वह एक लकीर ग्रौर जोड़ दिया करती थी। जब वह तीस हो जाती तो ग्रपनी ग्रंगुलियों की एक रेख पर दूसरे हाथ की ग्रंगुली रखकर खुश हो जाया करती थी कि एक माह तो बीत गया। उस समय उसके चेहरे पर ग्राशा के भाव चमक उठते थे।

ग्रौर जब बारह माह बीत गए ग्रौर भोटिया नहीं ग्राया तो वह रो उठी। ग्रपनी माँ की गोद में सिर छुपाकर वह इतनी रोई कि माँ का दिल भी भर उठा।

"बेटी, इस तरह जी को कच्चा नहीं किया जाता है, भींटिया पढने-लिखने गया है। कारिन्दा भूरसिंह कह रहा था कि वह खद्दर पहनने वालों के साथ रहता है, कभी उसकी धर-पकड भी हो सकती है।

माँ को जो नहीं कहना था, वह उसके भोलेपन ने कह दिया।

ढोलकी चिहुँक उठी, 'फिर माँ भींटिये को बुला लो।"

"पगली हो गई है, तेरा काका कहता था कि कारिन्दा बकता है, वह डरता है कि गाँव में पढे-लिखे हो जायेंगे तो फिर वे चोरी-लूट आसानी से नहीं कर सकेंगे। उभरी असलियत का पर्दाफाश हो जाएगा।"

ढोलकी को न जाने माँ की बात से ढाढस क्यों नहीं हुआ।

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृति की भांति उसे अच्छे पर कम भरोसा हुआ और बुरे पर अधिक। दयनीय अवस्था उसकी हो गई। उसका होने वाला धणी (पति) खादी पहनने लगा। गाँधी बाबा का चेला हो गया। उसे जेल भी हो सकती है। नहीं ""नहीं""वह अकेली क्या करेगी? दुख ही दुख, रात को वह घास के ऊँचे ढेर पर बैठी-बैठी एक तड़पती हुई रागिनी गाने लगी। विरह में तड़पती मूमल का गीत!

काली-काली काजलिये री रेख रे
भूरोड़े मुजों पे चमके बिजली
जुग जीओ म्हारी मूमल ह्यालो नी लश्करियें ढोले 'रे देश""

राजस्थान का वह अमर प्रेम-लोक गीत संसार की प्रेम कहानियों में अपना विशेष महत्त्व रखता है। विरह, मिलन, हास्य-रोदन से भावपूर्ण यह गीत उस विरहणी मूमल की याद दिलाता है जिसने आजीवन विरहानल में सुलग कर मृत्यु का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया था।

ढोलकी के नयनों के आगे कहानी साकार हो उठी। उसकी अनुभूति भींटिया के विछोह में मूमल-सी हो गई।

"गढ़ मे मूमल सज-संवर के अपने प्रेमी पति महेन्द्र की प्रतीक्षा में बैठी है। केसर-सा रंग दीयों के प्रखर प्रकाश में उसके सौन्दर्य को दृष्टिप्रिय बना रहा है।

महेन्द्र हर रात आता है और सुबह ऊँट पर सवार होकर पुनः चला जाता है।

दिन बीत रहे हैं—

एक दिन मूमल की छोटी बहन सूमल अपने बहिन के स्वामी को देखने का हठ कर लेती है।

उपहास के लिए अपनी बहिन को मर्दाने वेष मे ढोली के कपड़े पहना देती है। दोनो बहिनें भरे हृदय से प्रतीक्षा करती है—राजा महेन्द्र की।

उस दिन वह सदैव की अपेक्षा देरी से आता है।

छोटी बहिन बड़ी बहिन के घुटनें पर सो जाती है।

महेन्द्र शीघ्रता में सन्देह का शिकार हो जाता है और मूमल के पवित्र प्रेम के कलंक की छाया देखकर बिना कुछ कहे जिस पाँव आता है उसी पाँव लौट जाता है।

फिर वह निर्मोही कभी भी नहीं आता।

विरहिणी मूमल आजीवन महेन्द्र की प्रतीक्षा में व्यतीत कर देती है। कहते हैं, मूमल अपने पवित्र-प्रेम के लिये जीवन भर अगारे-सी सुलगती रही।

उसकी याद को अमर करने के लिए यह गीत रचा गया है। जब कोई प्रेमिका अपने प्रेमी के विछोह में बेचैन होती है तो इसी गीत को गुन गुना कर धैर्य ले लिया करती है।"

ढोलकी बड़बड़ा उठी, "क्या झौटिया नहीं आएगा?"

उसका अन्तर बोल उठा, "वह महेन्द्र थोड़े ही है।"

तभी तोतो हड़बड़ाती हुई ढोलकी के घर मे काका-काका पुकारती हुई आई, "काका, काका! गजब हो गया।"

"क्या हो गया ?" ढोलकी की तन्द्रा टूटी।

"गैले ने भूरसिंह का सिर फोड़ दिया।"

"किसका सिर फोड़ दिया।" चौधरी ने घर से बाहर निकलकर पूछा।

"भूरसिंह का।"

"किसने ?"

"गैले ने ?"

"क्यों ?"

"उसने हरखा बहिन की इज्जत लूटनी चाही।"

ढोलकी को गुस्सा आ गया, "गैले ने उसे जान से क्यों नहीं मार दिया ? वह कमीना जान जाता कि दूजों की बहू-बेटियों की इज्जत लूटने का क्या फल मिलता है ?"

चौधरी ने गम्भीर होकर कहा, "सुजानसिंह के अत्याचार दिन पर दिन बढ़ रहे हैं। भूरसिंह उसका दायाँ हाथ बना हुआ है। मैं शीघ्र ही शहर जाऊँगा। अब बिना प्रजा-परिषद की सहायता के उद्धार सम्भव नहीं।"

"हरखा कहाँ है ?" ढोलकी ने तोती का हाथ पकड़ लिया।

"अपने घर मे।"

"चल, उसे धीरज बँधा आए।"

दोनों जनी उधर चली।

हरखा टूटे-फूटे लाल मिट्टी के घर में जमीन पर पड़ी-पड़ी रो कर निढाल हो रही थी। जब ढोलकी और तोती घर मे घुसी तो हरखा और जोर-शोर से सुबकियाँ भरने लगी।

ढोलकी ने पहले-पहल सांत्वना दी और बाद में अकड़कर फटे बाँस-सी फट पड़ी, "तेरे हाथों मे कौन-सी मेहदी लगी थी, हरामजादे को लाठी से मार कर जमीन पर क्यों नही सुला दिया ? मर भी

जाता तो पिंड छूट जाता। ये लातों के देवता इस तरह नहीं मानेंगे। ये हमारे सेर की मारेंगे तो हम पंसेरी (पाँच सेर) की लगायेंगे, तभी इनकी अक्ल ठिकाने आयेगी।"

तोली ने ढोलकी के कथन की पुष्टि की, "उस वर्णशंकर ने एक बार मुझ से भी छेड़खानी की थी। मैंने तमककर कहा, "ओ कुत्ते के बच्चे ! मूंछ का बाल रहना दोरा (कठिन) हो जायगा। दोनों मूँछों को पकड़ कर उखाड़ फेंकूँगी। मेरा नाम तोली है, तोली, उस दिन से मुझे तो वह अपनी माँ-बहिन समझने लगा। नजर उठाकर देखता तक नहीं है। जब तक लुगाई अपनी रक्षा खुद नहीं करेगी तब तब उसका भला नही हो सकता।

पर हरखा किसी और ही विचार मे खोई हुई थी। उसका मन पछी कहीं और ही भटक रहा था। उसकी आँखो के सम्मुख मास्टर का सौम्य मुख-मंडल घूम रहा था। निर्दोष व अलौकिक।

जब ढोलकी और तोली बिलकुल चुप हो गई तो हरखा के हृदय उद्गार एकाएक फूट पड़े, "न माटरजी मुझे छोड़कर जाते और न मेरी यह दुर्गति होती।"

ढोलकी को हरखा की नादानी पर गुस्सा आ गया, "तू तो बावली हो गई है। माटरजी, तेरी चिन्ता करने वाले ही कौन हैं ? तू ठहरी बाल-विधवा और वह ठहरा अपना पावणा (मेहमान) पावणा तो कभी-न-कभी जायगा ही। फिर तू उसे ओलमो (उलाहना) क्यों देती है ? तेरा रखवाला तो अब भगवान ही है।" उसी पर भरोसा रखकर अपने आप की रक्षा के लिये हाथो को लोहे का बनाले।"

हरखा ने दोनो को गले से लगा लिया।

: १६ :

"अब संसार मे कोई दुख सुनने वाला हमें नजर नहीं आता। कहाँ जाये, किसे सुनायें ?....महाराज साहब ने भी अपने कान मूंद लिये हैं। वह भी अपने भाई-बेटो की सुनते हुए हमारी क्यों सुनने लगे ? अगर ससार में कही ईश्वर है तो सुनेगा वरना अत्याचारों का अन्त नहीं।

कांगड़-काण्ड के पीड़ित-शोषित किसान, आँखों में अश्रु भरकर हिचकियों के साथ अपने दुख की कहानी प्रजा-परिषद के कार्यकर्ताओं को सुना रहे थे। उनकी वाणी मे युगों से शापित-दुखित इन्सानों का वह दर्द था जो भूकम्प बनने की ओर बढ़ रहा था।

आसनाथ जोगी बोला, "ठाकुर के आदमी हमारे पर खुल्लमखुल्ला अत्याचार कर रहे हैं, ये हमारी औरत तक को घसीट कर डेरे मे ले जाते हैं। बेगार कराते है। अन्याय करते हैं।"

गाँव वालों को इतनी बेरहमी से पीटते हैं कि वे अच्छी तरह रो भी नहीं सकते, तुरन्त अचेत हो जाते है।" बखसाराम ने कहा।

गोमाराम भड़क उठा, ना मालूम यह किस चमार की औलाद है, सेराराम की तो जनेऊ तक तोड़ डाली।"

चूनाराम अब तक बिलकुल मौन बैठा था। उसकी झील-सी गहरी आँखो में वेदना का तूफान-सा उठ रहा था "सच तो यह है कि पंडितजी जब तक इनका विरोध नहीं किया जायेगा, पत्थर का जवाब पत्थर से नहीं दिया जायेगा तब तक इनके नंगे जुल्म नहीं रूकेंगे।.... धरखाराम और गणपत को इन लोगों ने भगवान की मूर्ति की तरह

लगा करके 24 घण्टे तक पीटा। अन्त में वे मूर्ति की तरह ही निर्जीव पाषाण हो गये।"

मास्टर ने उन्हें आश्वासन दिया, "आप चिंता न करें, मैं शीघ्र ही चंद कार्यकर्ताओं को कागड भेजकर मामले की तहकीकात कराऊँगा। अत्याचार और अन्याय चाँद-सूरज नहीं बन सकते। वे तो तारे है जो सूर्य के छुप जाने पर टिमटिमाने लगते है और उसके उदय होते ही लुप्त हो जाते है। जनता और संगठन की आवाज को दबाना सहज नही है। मेरे किसान भाईयो! जब जनता के चाँद और सूरज उदय होते है तो घने अन्धकार से घिरा आकाश भी अलौकिक प्रकाश से जगमगा उठता है। आपको अब पर्दे मे नही रहना होगा। आपको चाँद और सूरज की तरह उदय होकर इन तारो को मिटाना होगा। ये तारे भी भोर के तारे है, रात की पर्तों से बुझते हुये अंगारे, बिना तेल के काँपते हुये दीये, तुम्हारा उदय ही इनका अस्त है।"

मास्टरजी की वाणी मे सरस्वती का वास था, जादू का असर था बेचैन, पीडित, निराश किसानो मे आशा की लहर दौड उठी। लहर से तरंगित उत्साह की उमंग ने उनके चेहरो पर एक अदम्य साहस आलोकित कर दिया। उन सबके मन के तार जैसे झनझना उठे "जाग, ओ किसान जाग! देख तेरे हरे-भरे खेतो मे आग लग चुकी है। ...... आग।"

मास्टर ने देखा काँगड़ का गरीब, सुसुप्त, संगठन हीन किसा अब जाग रहा है। अत्याचार उन भूखे पेटों को संगठन के एक ता मे पिरो रहा है।

मास्टर उच्च स्वर में बोला, "तुम पृथ्वी के चाँद-सूरज हो, संसा के गरीब किसान और मजदूर का सारा अस्तित्व हाथों में है। यदि 'सूरज' हाथो से काम लेना बन्द कर देगा तो ये राजाओं के तलुवे सहलाने वाले चाकर धरती पर बिना पानी की मछली की तरह तड़

पते हुए नजर आयेंगे । वे यह कहना सर्वथा भूल जायेंगे कि बकरियाँ मरते समय मिमियाती है, मगर माँस खाने वाला मिमियाने की परवाह नहीं करता । इनके हिंस्त्र जबड़ों को बकरी का नहीं, आदमी के माँस का स्वाद लग चुका है, अब इनके इन जबड़ों का जब तक समूल नाश नहीं होगा तब तक ये अपनी नीच प्रवृति का परित्याग नहीं करेंगे।" एक आन्दोलन होगा।

मास्टर ने बाहर निकलते हुये किसानों को अन्तिम आश्वासन दिया, "आप चिंता न करें,मैं शीघ्र ही एक शिष्ट मंडल गाँव भेजूंगा। हाथ पर हाथ धरे नहीं रहूँगा, संघर्ष किया जायगा—जनता की अजेय शक्ति के साथ । "बोलो महात्मा गांधी की जय ।" सब ने जय बोली ।

दुःख-दर्द की कथा कांगड़-कांड की बहुत ही हृदय-विदारक थी। ठाकुर गोपसिंह के अत्याचारों ने जब नग्न रूप धारण किया और गढ की चाहर-दीवारी के वैभव-विलास में डूबे राजाजी ने अपनी रैय्यत की बात न सुनकर प्रजा के भक्षकों की बात मानी तब दलितों में जागरण की लहर दौड़ पड़ी । प्रजा परिषद के लोगों ने उनमें नयी चेतना व जागरण का मन्त्र फूंका ।

कांगड़ के किसानों पर बहुत ही कम लगान थी। दरअसल यह गाँव पहले कडीड जात के जाटों का था, उन्हीं के द्वारा इनकी नींव का पत्थर रखा गया था । समय के प्रवाह ने परिवर्तन का चक्र चलाया और यह कांगड-ग्राम राठौर के हाथ लग गया ।

पहले-पहल संवत् 1980 में जब यह किसी ठाकुर या उमराव के आधीन नहीं था तब यह गाँव खालसा में था और मजरूआ की बीघा दो आने और पड़त बजर दो पैसा थी । लेकिन अफीम के नशे में डूबे हुए ठाकुर ने मजरूआ की बीघा 25) कर दिया और बजरा का 19) । इस पर लाग-बाग अलग ।

किसान इसे किसी भी तरह अपना पेट काटकर सह रहे थे लेकिन

जब वसूली में मनचाहा जुल्म होने लगा तो उन्होंने आवाज उठाई। उनकी आवाज रंग लाने लगी। इस रंग में हर किसान रंगने लगा।

आश्वासन देकर मास्टर भीतर आया और झोंटिया को पुकारा।

"कहिये मास्टर जी।" झोंटिया उसके पास आ गया।

"शिक्षा तो तेरी अच्छी तरह चल रही है। कांगड़ गाँव के ठाकुर गोपसिंह जी के अत्याचार भी तूने सुन लिये हैं। कहो, क्या विचार है ? कुछ करोगे !"

"मेरा ख्याल है कि मैं भी इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लूं। मैं भी एक किसान हूँ, दलित और शोषित।"

"हाँ, कल ही तू प्रजा-परिषद का सदस्य बन जाना, खद्दर तुम पहनते ही हो। अब मुझे ऐसे ही आदमियों की जरूरत है, जो मृत्यु को जीवन समझते हैं और भय को पहचानते ही नहीं हैं।"

झोंटिया ने मास्टर के चरण-स्पर्श कर और श्रद्धा से सिर झुकाकर बोला, "ऐसा ही बनूँगा।"

"मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।"

: १७ :

"क्या मैं भीतर आ सकती हूँ ?"

"तुम्हें भी पूछकर भीतर आना पड़ेगा क्या ?"

"जब कोई आदमी पुस्तक के साथ अपने आपको भूल चुका हो तो ?"

"तो भी सामीप्य वालों को यह अधिकार है कि वे उसकी तन्मयता को भंग करें।"

कृष्णा भौंटिया के पास आकर बैठ गई।

"तुम्हें उम्मीद थी कि मैं अभी आ सकती हूँ ?"

"नहीं, तुम राठौर वंश की मुकन्या हो, गढ़ की चहारदीवारी पार कर जाट के घर पर आना, मेरी कल्पना के बाहर की बात है।"

"लेकिन भौंटिया·······"

"भौंटिया नहीं, सूरज।"

"सूरज ! तुम तो जानते हो कि मैं······।"

"कृष्णा !" भौंटिया बिलकुल गम्भीर हो गया। उसके गले में कुछ अटक-सा गया था। इन चार महीनों में जब-जब कृष्णा से भौंटिया की भेंट हुई उसने अपनी और कृष्णा की स्थिति के कटु सत्य को बताना चाहा, तब-तब उसके गले में कुछ अटक-सा जाता था और वह पूर्व निर्णय से विचलित हो जाता था।

"तुम चुप क्यों हो गये ?" उसका स्वर अज्ञात-भय से कांप उठा।

"सोच रहा हूँ चींटी पहाड़ पर चढ़ने का प्रयास कर रही है। भला तुम्हीं बताओ, एक चींटी बहुत ऊँचे पहाड़ पर पहुँच सकेगी ?"

"बहुत वर्षों के बाद कदाचित पहुँच जाय।"

"मैं भी देख रहा हूँ, वह चींटी वर्षों से उस पहाड़ पर चढ़ने का प्रयास कर रही है लेकिन अन्धड़, वर्षा, तूफान, गर्मी-सर्दी उसे चोटी पर पहुँचने से रोक रहे हैं। युग-युग से वह चींटी अपनी मंजिल पर नहीं पहुँच रही है। आखिर क्यों ? भौंटिया के दायें हाथ की अंगुलियाँ अपने ही बालों में उलझ गई। उसे समाज के प्रति एक रोष सा आ रहा था। जिसने धरती की सन्तान में भेद-उपभेद की गहरी दरारें डाल दी थी।

"मैं तुम्हारा आशय समझ गई हूँ सूरज, पर मैं दुखी हूँ। मैं तुम्हारे लिए·······।" वह जो कहना चाहती थी कह न सकी।

"प्रेम का अन्धापन विवेक को पथभ्रष्ट कर देता है। तुम में

साहस है–राठौर की ढाई हाथ लम्बी जूतों मे लड़ने का; जो जूती कानून की सज्ञा से पुकारी जाती है। इसलिए दिवा स्वप्न मे भटकने से कोई लाभ नही। अपने अस्तित्व को पहचानो और सही लड़ाई लड़ने की चेष्टा करो, अपने को बदलो।" भीटिया की आँखें सजग हो उठी।

"तुम कायर हो।" कृष्णा की आँखें लाल हो उठी।

"कायर नही, समझदार हूँ।"

"भाग चलो, क्या संसार मे हम दोनों के लिए कोई जगह नहं है ?"

"भागने वालों के लिए जगह नहीं होती।"

"इतना बडा जो संसार है।"

"भागने वालों का समाज पीछा नहीं छोड़ता, कृष्णा! बहुत दिनो से तुम्हे कुछ बातें कहने का विचार था, लेकिन कहने का साहस इसलिए नही होता था कि उनसे तुम्हारे हृदय पर गहरा आघात लगने की सम्भावना है।" अब भीटिया ने अपनी सजल आँखें पुस्तक के खुले पृष्ठो पर जमा दी, "आज से नहीं, आदिम युग से वर्तमान परिस्थिति एव समाज व्यवस्था की गलत बातों के प्रति नई पीढ़ी मे विद्रोह रहा। यह विद्रोह की भावना मनुष्य के हृदय में प्रकृति की जन्मजात देन है। रूढिगत परम्पराओ से असन्तोष की आग सुलगती है और वह आग दबाने से और भडकती है तब तक एक नये विद्रोह का जन्म होता है। नया विद्रोह नया परिवर्तन लाता है। पर विद्रोह का सूत्रपात हमारे-तुम्हारे भागने से नहीं होगा। पलायन समस्या का समाधान थोडे ही बन सकता है। उसके लिए वैसी ही स्थिति एव वातावरण तैयार किया जाता है। एक ऐसी आवाज लगाई जाती है जो हमारी पुरानी दकियानूसी मान्यताओ के विरुद्ध संघर्ष को बुलन्द करती है।"

कृष्णा का चेहरा, ग्रहण लगे चांद की तरह उदास हो गया। लेकिन उसका सूरज तो दोपहर की तरह आग उगल रहा था, "तुम मुझसे प्रेम करती हो, उसे मैं स्वीकार करता हूँ। लेकिन आखिर तुम मुझसे ही प्रेम क्यों करती हो ?" कलेजा बींधने वाले प्रश्न ने कृष्णा को तिलमिला दिया। वह भौचक्की-सी उसकी ओर देखने लगी।

"मैं तुम्हें आज से नही, बचपन से चाहती हूँ।"

"यह झूठ है, बचपन अबोध होता है। पवित्र होता है। झोटिया के स्वर का विश्वास बोला।"

"यह सच, बिलकुल सच है।" कृष्णा का तन-बदन काप रहा था जैसे हवा के झोंके से बेल कांपती है।

'अपने आपसे छल न करो कृष्णा।" झोटिया दुख से कराह उठा, "मेरी बातों से तुम्हें बड़ी तकलीफ होगी लेकिन वह तुम्हारे जीवन में नयी प्रेरणा को भी जन्म दे सकती हैं। कृष्णा ! तुम यह भली-भाँति जानती हो, कि तुम्हारा मेरा ब्याह तुम्हारे सम-कुलीन घराने में सम्भव नही है।" तुम्हारे पिताजी राजाजी के विरुद्ध उपद्रव करके उनकी दृष्टि में अपराधी बन गये धन का इतना अभाव है कि दहेज देना तुम लोगों के लिए सर्वथा असम्भव ! लालकुंवर जीवन की दुर्दशा ......। इन्हीं सब बातों ने तुम्हें विवश किया, कि तुम मेरी ओर आकर्षित हो और यह जानते हुए कि मैं ढोलकी से प्रेम करता हूँ। उससे उसका निकट भविष्य में विवाह भी होगा। रोती क्यों हो कृष्णा ? रोने से तुम्हारे दुख खत्म नही हो सकते।" झोटिया का गला भर आया। उसने स्नेह से कृष्णा के सिर पर हाथ रख दिया उसके घने गहरे मुलायम केशों पर हाथ फेरने लगा, "मैं जानता हूँ कि तुम मुझे बहुत स्नेह से चाहती हो, इतना, जितना अपने आपको ? पर केवल चाहने से तो चाह पूरी नहीं होती। यह तुम्हारा भूत-सा भयानक समाज अपनी तथा कथित आन के लिए मानवता की सीमा को

पार कर जाएगा। तुम्हारी यह सुराही जैसी लचकदार गर्दन उसके खूंखार पंजों द्वारा घोट दी जाएगी।' झीटिया बिलकुल आवेश में आ गया। उसका अंग-अंग फड़कने लगा, "विश्वास न हो तो, आजमा के देख लो, जाकर अपनी बुआ से कहो तो कि मैं एक विजातीय के साथ कल भागना चाहती हूँ पर भागना अच्छा नहीं।"

कृष्णा ने तुरन्त आँसू पोंछ लिये। झीटिया ने देखा तो वह कांप गया। इतना भयंकर रूप उसने कृष्णा का कभी नहीं देखा था। ऊषा की शीतल ज्योत्स्ना की सदा प्रफुल्लित रहने वाली कृष्णा के शोले की तरह जलते चेहरे को देखकर उसके भी रोंगटे खड़े हो गये। कल्पना के परे की दुस्साहस की भावना उसे कृष्णा के मुख पर खेलती नजर आई।

"अच्छा सूरज, अन्तिम प्रणाम।"

"कृष्णा।" चिहुँक उठा झीटिया, "यह क्या कहती हो?"

"मेरी एक बात मानोगे सूरज?" उसके स्वर में धैर्य था।

"मानूंगा।"

"टालोगे तो नहीं।"

"नहीं।"

"मुझे भूलोगे तो नहीं?"

झीटिया पाषाण। बुत!

फिर बोला, "नहीं। प्रेम के अनेक रूप हैं। मैं तुम्हें एक अच्छे समझदार मित्र के रूप में सदा याद रखूंगा।"

उसने कृष्णा को गहरे पवित्र अपनेपन से देखा। वह करुणाभि-भूत हो गया। कृष्णा की आँखें भर आईं। उसने झीटिये को प्रणाम करके कहा "तुम याद रखोगे, यही मेरे लिये बहुत है।"

झीटिया कुछ कहता इसके पहले कृष्णा चली गई। झीटिया खड़ा था निश्चल और निश्चेष्ट।

कृष्णा के चले जाने के बाद भीटिया की आँखों में अश्रु छलछला आये। वह मन ही मन बोला, "बड़ी दुखियारी है।"

रात का गहरा अन्धेरा संसार पर छा गया था। कृष्णा अपने पलँग पर लेटी-लेटी पागलों की तरह तारों को गिनने का असफल प्रयास कर रही थी। सूरज के नाम पर वह पत्थर का सीना चीर कर बहने वाले झरने की तरह फूट पड़ती थी। उसने करवट बदली, "सूरज ने ठीक ही तो कहा कि यदि परिस्थिति तुम्हारे हक में होती तो तुम मुझ से प्रेम नहीं करती? नहीं। उसके कटु यथार्थ को मैं उसकी कठोरता को क्यों समझूं? उसके हृदय की पशुता क्यों जानूं? विवशता से उत्पन्न प्रेम की विद्रोही परम्परा प्रेम का शुद्ध रूप तो नहीं हो सकती। मैं ही गलत हूँ। मुझे उससे पवित्र स्नेह सम्बन्ध रखने चाहिए।

कृष्णा के गाल गीले हो गये। उसको नींद की झपकी आ गयी। सपना ......

एकाएक उसे डेरे की मोटी लाल पत्थरों की दीवारें उसके चारों ओर घेरा बनाती हुई जान पड़ी। वह काँप उठी, जब उसने देखा कि एक कंकाल उसकी ओर हाथ किये खड़ा-खड़ा अट्टहास कर रहा है। उसके ललाट पर भय से पसीना चमक उठा। उसने काँपते हुए पूछा—"तू कौन है?"

वह खी-खी-खी-कर हँस पड़ा—तू मुझे नहीं पहचानती? खी-खी-खी-जरा पहचान, डर नहीं, खी-खी-खी-मैं लालकुंवर हूँ, तेरी बड़ी बहिन, खी-खी-खी अपने जीवन में मैं सदा सुखों से वंचित रही, इसलिए अब मैं मरने के बाद इधर-उधर भटककर सृष्टि के सुखों का अवलोकन कर रही हूँ, खी-खी-खी......।"

कृष्णा ने अपने दोनों हाथों से अपनी आँखें बंद कर ली थी। जागी। उसने पुनः अपने हाथों को हटाया। वही स्वच्छ नीला गगन

था—काली राख के घेरे की तरह। वही तारे थे–बुझे हुए अंगारों की तरह।

इसके बाद वह इतनी विचलित हो गई, कि सो न सकी। सारी रात उसने आँखों ही आँखों में काट दी।

× × ×

प्रभात हो गया था।

गोल मेज के चारों ओर कृष्णा की बुआ का सारा कुनबा बैठा था। डावड़िया चाय-नाश्ते का सामान ला रही थी। ठाकुर साहब के सिर में दर्द था इसलिए वे अनुपस्थित थे।

कुंवर अजीतसिंह चाय की चुस्की लेते हुये, बोला—"अपने राज्य के दीवान बड़े ही मूर्ख हैं। कल जो महाराज के यहाँ भोज हुआ था उसमें उन्होंने एक अंग्रेजी लेडी को बैठने का संकेत करके कहा—"मैडम !" सिट्जा।"

"सिट्जा" कहकहे में बैठक गूँज उठी।

"बैठ जा का सिटजा कर दिया?"

"क्या बुरा किया, आखिर दीवानजी को इतना अधिकार नहीं होगा तो फिर किस को होगा?"

"इसी प्रकार एक बार एक विदेशी ने उनसे सूरसागर तालाब के बीच के खड्डे के पानी के बारे में पूछा तो आपने अपने श्रीमुख से फरमाया–'इन दिस कुण्डिया, गोडा-गोडा वाटर !"

जोर का कहकहा। एक विचित्र मस्ती की लहर। अनायास फूटा हुआ खुशियों का स्रोत। कहकहे, हँसी, अट्टहास।

इन सब के बीच कृष्णा निस्तब्धता की एक असंगत रेखा खींच रही थी। अजीतसिंह ने तड़ाक से पूछा, "क्या बात है कृष्णा बाई सा, आप उदास क्यों हैं?"

कृष्णा दुख की मौन हँसी हँस पड़ी।

"बोलती क्यों नहीं ?" बुग्रा ने तेज स्वर में कहा।

"बुआ जी ? आज से मेरा और आपका साथ छूट रहा है। मैं आज आपसे बहुत दूर जा रही हूँ।" अपने अन्तस्थल के उठते हुए रोने को होंटों और दांतों के बीच रोककर उसने कहा।

कमरे में शांति छा गई जैसे वहाँ कोई नहीं है।

बुआ ने अपने मुह को मेज पर झुकाते हुए लम्बे स्वर में कहा, "क्या-कह रही हो, कृष्णकुवर ?"

"हाँ बुआ जी ! मैंने तय कर लिया है कि मुझे इस कैद से दूर जाकर एक आत्म-निर्भर जीवन जीना है।"

"तो इसमें भाग जाने की क्या बात है ?" बुआ झुंझला उठी उपस्थिति परेशान-सी कृष्णा को देखने लगी।

"इस घर में तो मेरी सामान्य जिन्दगी नहीं हो सकती ?"

"क्यों ?" अजीतसिंह जैसे चौका।

"दहेज में गाँव, सोना, चाँदी, दरोगे-डावड़ियां और रुपये चाहिए। वे कहाँ से आयेंगे ?"

अजीत पर घड़ों पानी ढुल गया। उसका उत्साह यकायक ठंडा हो गया। जिस ताव से वह बोला था वह ताव ही नहीं रहा।

"फिर तुम्हें अपने जीवन को अपने धर्म के अनुसार व्यतीत कर देने के लिए तैयार रहना चाहिए। लालकुंवर ने जिस प्रकार आजीवन कौमार्यव्रत पालन कर अपने धर्म की मर्यादा रखी है उसी प्रकार तुम्हें.........।"

"मैं ऐसा करने में असमर्थ हूँ।" बीच में ही बात काटती हुई कृष्णा दृढ़ता से बोली।

"क्या कहा ? अजीतसिंह, जा, ठाकुर सा को बुलाकर ला तो।" क्रोध में बुआ फुफकार-सी उठी।

अजीतसिंह चला गया। उपस्थिति के चेहरे पर आश्चर्य भाव

उठा । कृष्णा को महसूस हुआ कि जैसे वे सब उसके मुँह पर थूकने के लिए तैयार हैं ।

ठाकुर ने कमरे में प्रवेश करते ही कहा, "क्या तुम्हारी अक्ल गाँव चली गई है ।"

"नहीं तो ।" अपने आप पर सम्पूर्ण काबू पाकर कृष्णा ने धैर्य से उत्तर दिया ।

"फिर क्या बकती है ? तू हमारी आन-शान, मान-मर्यादा को कलंकित करेगी । अब यदि तू इस प्रकार के बोल अपनी जबान पर लाई तो हम से बुरा कोई नहीं होगा ।"

कृष्णा ने देखा—ठाकुर साहब बार-बार अपनी मूँछों पर ताव दे रहे हैं । अपने एक पाँव को जमीन पर पटक रहे हैं, सहसा कृष्णा को भीटिया के वे शब्द याद हो आए—"मैं जानता हूँ कि तुम मुझे बहुत चाहती हो, पर केवल चाहने से तो चाह पूरी नहीं होगी। यह तुम्हारा भूत-सा भयानक समाज अपनी तथाकथित आन के लिए मानवता की सीमा को पार कर जायेगा । तुम्हारी यह सुराही जैसी लचकदार गर्दन उसके खूँख्वार पंजों द्वारा दबोच ली जायेगी ।"...... विश्वास न हो तो आजमा के देख लो । जाकर अपनी बुआ से कहो तो सही कि मैं कल एक सम-विजातीय के साथ भाग जाना चाहती हूँ ।"

कृष्णा संभली, ठाकुर साहब आपकी मर्यादा तो कलंकित होगी ही ।"

"क्या कहा ?"

ठाकुर साहब ने खून का घूँट पिया । उन्होंने अपने डेरे के बड़े-बड़े शिला-खड ताश के मकान की तरह गिरते नजर आए ।

"इस को डेरे से बाहर कदम भी नहीं रखने दिया जाय । जब तक यह अपनी जबान बन्द न कर ले ।"

कृष्णा ने दृढ़ता से कहा, "लेकिन मैं अब अपनी जबान बन्द न करूंगी। जब तक आप मुझे यहाँ से जाने नहीं देंगे। ठाकुर सा मैं एक स्वतन्त्र और स्वावलम्बी जीवन जीना चाहती हूँ।"

'निर्लज्ज कहीं की। घर की मान-मर्यादा और कुलीनता का ध्यान ही नहीं। मैं कल ही तुम्हें अपने गाँव भेज दूंगा। मैं यह दोष अपने पर नहीं ले सकता।" ठाकुर साहब ने जोर का मुक्का मेज पर मारा। वह मुस्करा पड़ी। उसकी मुस्कान में वैसी ही वेदना थी जैसी परवश द्रौपदी के मुख पर जुए के दाँव पर लगाने से आई थी। जो सीता के पुनः वनवास जाने पर आई थी। युग-के-युग बदल गये, वैज्ञानिकों ने सागर की गहराई का पता लगा लिया और पर्वत की ऊँचाई का। पर आज तक वैज्ञानिकों ने नारी के मन की वेदना का थाह नहीं पाया।

कृष्णा का स्वर अस्फुट हो गया, ठाकुर सा! मेरा निर्णय अटल है, मैं जरूर जाऊँगी।

अजीतसिंह कंस की तरह दहाड़ा, यह असम्भव है। हम तो तुम्हारे गाँव भेज देंगे फिर तुम जो मर्जी आये करना।

कृष्णा फिर मुस्कराई।

अजीतसिंह ने फिर कहा, "यदि ऐसी ही मन में थी तो किसी साधारण व्यक्ति के घर जन्म लिया होता जहाँ मन से बड़ी मान-मर्यादा न होती हो।

कृष्णा चली गई। ठाकुर साहब ने अन्तिम फैसला दिया, तुरन्त एक ऊँट इसके ठिकाणे रवाने करके लालकुंवर को इस निर्लज्ज की बातों की जानकारी भेज देनी चाहिये।

× × ×

न जाने भीटिया को कृष्णा के चले जाने के बाद चैन क्यों नहीं मिला? उसका मन किसी काम में नहीं लग रहा था। मास्टर ने

तीन-चार दफे उसे बुलवाया तो भी वह वहाँ नहीं गया। लाचार मास्टर को खुद ही आना पड़ा। मास्टर ने आते ही शांत स्वर में पूछा, "तू उदास क्यों है? तबीयत तो ठीक है।"

मास्टर ने सारी कथा आदि से अन्त तक सुन ली। कथा का अन्त होते-होते मास्टर अत्यन्त गम्भीर हो गया। पश्चात्ताप-भरे स्वर में आह छोड़ते हुए बोला, "तूने बहुत बुरा किया है, भीटिया।"

'आखिर मैं करता ही क्या? सत्य कड़वा पकौयत होता है पर होता है सुखदायी।"

"हाँ, मैं जानता हूँ। पर तुम यह भी नहीं जानते भीटिया, वह सामन्त समाज वह सड़ा हुआ तत्व है जो दिन-प्रतिदिन और घिनौना बनता जा रहा है। धीरे-धीरे इसका घिनौना रूप इतना ही भयानक हो जायगा, कि उसे अपनी विकृति में ही सत्य के दर्शन होंगे। तब नया जीवन, नया विचार नया उत्साह इस विकृति को इन्हीं डेरों के नीचे गाड़ देगा ताकि इन्हीं की आने वाली पीढ़ी सहज इन्सान की जिन्दगी जी सके। उसे मानव की सहज सहानुभूति, नारी की वास्तविक वैकल्यता व प्रेम प्राप्त हो सके। पर अभी तो वह विकृति अपनी चरम सीमा की ओर बढ़ रही है। ऐसे समय में तूने कृष्णा के हृदय में साधारण नारी को पैदा करके अच्छा नहीं किया।"

"क्यों?"

"शायद तुम्हें मालूम नहीं कि ये लोग सामान्य जीवन को हेय समझते हैं।" मास्टर को आशंका हुई। कहीं कोई दुर्घटना न हो जाए?

भीटिया डर गया। उसे अपने दोनों हाथ खून से लाल-लाल जान पड़े, "मास्टर जी।"

"बात हाथ से निकले पंछी की तरह है। निकल जाने के बाद वापस नहीं आती। कुछ सोचो। हो सके तो उसे समय की प्रतीक्षा करने के लिए कहे—ताकि सही अवसर सही बात के लिए मिले।"

भीटिया के चेहरे पर दृढ़ता भाई।

मास्टर उठ खड़ा हुआ। द्वार का सहारा लेकर वह कहने लगा, "कल शाम को परिषद् के कार्यालय आ जाना, परसों तुम्हें कांगड़ गांव जाना है। ये वैयक्तिक समस्यायें सुलझती ही रहेगी पर सामूहिक समस्या का समाधान तो तुरन्त हो जाना चाहिए।"

"जो शिष्ट-मंडल महाराज से मिला था, उसको क्या जवाब मिला ?" भीटिया ने पूछा। वह अपने को सामान्य करने का प्रयत्न करने लगा।

"महाराज के गृहमन्त्री ने खरी-खोटी सुनाकर प्रतिनिधि मंडल से कहा, 'आप हमारे नियमों को बदलना चाहते हैं। अकाल है तो क्या हुआ ? अकाल हमने तो पैदा नहीं किया। इन्हीं किसानों के भाग्य से हुआ है। इन्हें अपना लगान देना ही पड़ेगा।" बेटा ! माँ अपने बच्चे को भी बिना रोये दूध नहीं पिलाती है। जी तो चाहता है कि अहिंसा और सत्याग्रह के शांति मय तरीकों को तिलाजली देकर महात्मा गांधी के 42 के आन्दोलन की तरह इस धरती के कण-कण में यह चेतना फूंक दूँ कि करो या मरो। यह धरती हमारी है, यह खेत हमारे हैं, यह मोतियों जैसे दाने हमारे हैं।"

मास्टर की मुट्ठियाँ बन्ध गई। वह कर्मठ सैनिक की मुद्रा में तनकर खड़ा हो गया। भीटिया देख रहा था, "मास्टर की आँखों में आग की लपटें उठ रही हैं जैसे ये लपटें विश्व के तमाम अत्याचार और अन्याय को भस्म करके नये जीवन आह्वान करेगी।"

× × ×

सवेरे उठते ही भीटिया कृष्णा के बुआ के डेरे की ओर चला। उसके पग भारी थे और उसकी आँखों के सामने बार-बार कृष्णा का मुख नाच रहा था, मुरझाये हुये फूल-सा मुख। फिर भी उसका अन्तर कह रहा था, "उसकी बुआ का पति विदेशों की सैर कर चुका

है। शिक्षित भी है, अजमेर की मेयो कालेज का; जो सिर्फ राजे-महाराजों व सामन्त-पुत्रों का ही कालेज है। वह भला इतना दकियानूसी नहीं होगा।

वह डेरे के आगे पहुँचा, वहीं भीड़ लगी थी। उसका हृदय शंका-आशंकाओं में डोलने लगा, ठीक उस तरह जिस तरह मंझधार में पतवार टूट जाने पर खेवैया का हृदय डोल उठता है। उसने चुपके से एक आदमी को पूछा, "क्या बात है, इतनी भीड़ क्यों है ?"

"कृष्णकुँवर बाई सा देवलोक सिधार......।"

उसका हृदय विदीर्ण हो गया। हृदय के करुण मौन रोदन से वह छट-पटा उठा। ठाकुर सा से उसने पूछा, "क्या हुआ था इसे, ठाकुर सा ?"

"हार्ट-फेल हो गया। एकाएक छाती में दर्द उठा और चल बसी।"

वह आकर एकान्त में बैठ गया। अर्थी बनाई जा रही थी। वह गुमसुम बैठा था। तभी दो व्यक्ति जो दरोगे ही थे, आपस में सुसपुस करने लगे, छाती मे दर्द नही उठा था जीवनसिंह।

"फिर ?"

"दरअसल कृष्णा बाई सा डेरे से जाना चाहती थी।"

"क्यों ?"

"राम जाने !" ठाकुर-सा ने पहले-पहल तो उसे भला बुरा कहा। जान से मारने की धमकी दी थी।"

"धीमे-धीमे बता, कोई सुन लेगा......"

"बाद में अजीतसिंहजी ने उन्हें खूब डाटा।"

"फिर ?"

'रात को ठाकुर सा ने अपने कुसूम्बे के प्याले को उसके हाथ में थमाकर कहा, "यदि तू अपना इरादा नहीं बदलती है तो ले पी,

इसी जहर को, ताकि हमारा कुल कलंकित न हो। हम तुम्हें अब यहाँ से जाने नही देंगे । आज से तू बंदिनी है हमारी ।"

"फिर ?"

"फिर उसने हँसते-हँसते कुसुम्बो पी लिया ।'

"मरते समय उसने कुछ कहा ?"

"नहीं, केवल उनकी आंखो मे आँसू थे ।"

अर्थी उठी, चली और चिता पर रख दी गई ।

देखते-देखते जलती चिता से मानवी रक्त मांस की दुर्गंध उठने लगी । चटखने की आवाज के साथ मांस के फटते हुए टुकड़े उस वातावरण मे वैराग्य की भावना को जन्म दे रहे थे ।

भौंटिया की आंखें भर आई । कृष्णा का मुख-मण्डल उसकी आँखों के सम्मुख मुस्कराता हुआ नाच उठा । उसकी अन्तरात्मा मे आभास हुआ जैसे एक फूल के साथ कांटा उग रहा है । वह कांटा उसके हृदय मे मार्मिक वेदना उत्पन्न कर रहा है । कह रहा है कि चिता में जलती हुई सीता-पुत्री को देख रहे हो जिसने न्याय नहीं, जीवन मांगा था । उठते हुए यौवन की अमराई मे एक उमंग के फूल की चाह की थी, उन पखुड़ियों की मांग की थी जिन्हें पुलकन की अनुभूति होती है । पर उसे कुछ नही मिला, न चाह मिली और न जीवन । उसे वही मिला जो युगों से इन नारियो को मिलता आया है । मीरा और चित्तौड़ की राजकुमारी, कृष्णा कुमारी की तरह इसे भी जहर का प्याला दिया गया, पर मीरा ने आत्म-विश्वास और अटूट प्रभु-भक्ति से विष के प्रभाव को समाप्त कर दिया और यह कृष्णा राजकुमारी की तरह मर गई । कुसुम्बो ""मृत्यु चिता" आग की लपटें ""।

इन सभी उत्तेजित विचारों ने उसके मस्तिष्क को डांवाडोल कर

दिया । उसने अपनी हथेली से झरते आँसुओं को पोंछा । उसे अपने चारों ओर फूल-ही-फूल नजर आये और उन फूलों में कृष्णा की विभिन्न आकृतियाँ ।

चिता अब भी जल रही थी ।

उसकी अन्तरात्मा का प्रेम आँसुओं की धार बनकर समर्पण के रूप मे टपकने लगा, *"कृष्णा ! तू परिजात बन और मेरे ये आँसू* उस पर शबनम की बूँदे बनकर चमकेंगे ।" कुछ देर सोचकर उसने अपनी विचारधारा को बदला, "पर तू परिजात कभी भी मत बनना। तेरी कोमलता की यहाँ कौन कद्र करने वाला बैठा है ।"

"अच्छा हो कि तू डायन बन और फिर इन तमाम राक्षसों को मटियामेट कर दे ताकि इन दरिन्दों का पाषाण-हृदय कम-से-कम यह महसूस तो कर ले कि हम वास्तव मे इन्सान नहीं, शैतान है।""""" विषाक्त पंजों वाले शैतान ""।"

उसने एक बार फिर अपने आँसू पोंछे । कई सिसकियाँ एक साथ आईं । उसके कानो मे कृष्णा का दर्द-भरा स्वर गूँज उठा, "मुझे भूलोगे तो नही ?"

भीठिया व्याकुल पंछी की तरह फड़फड़ा उठा ।

उसके मस्तिष्क में संध्या के समय की क्षितिज पर उठती हुई धुंध-सी रेखायें छा गईं । मिल के धुएँ की तरह उसके मस्तिष्क मे काले-काले बादल मंडरा गये । उसका मस्तिष्क शून्य-सा होने लगा। यकायक उसके मस्तिष्क की शून्यता में बिजली-सी पतली रेखा कोंधी- जैसे उसका अन्तर कह रहा हो, "हाँ, कृष्णा हाँ, मैं तुम्हें कभी नही भूलूँगा । मैं तुम्हें सदा याद रखूँगा । एक दुखियारी के रूप मे। कृष्णा ! तेरी हत्या हुई है पर कौन हत्यारों को पकड़ सकता है। न्याय, अदालत और गवाह सभी के सभी तो इन्हीं के हैं। पर समय अवश्य ही न्याय करेगा ।" वह नई आशा के साथ घर आ गया।

: १८ :

अकाल की छाया गाँव पर मंडराने लगी। नीले आकाश पर उड़ते हुये गिद्धों को देखकर चौधरी के मन में दुर्दिन मे मरे हुए पशुओं की याद ताजा हो उठती थी और उसका कलेजा काँप उठता था। खेत सूने थे जैसे कि प्रकृति ने धरती का समस्त सौंदर्य अपहरण करके उसे वैधव्य की आग में गुलगने को छोड़ दिया हो। सूखे पेड़ रोमांच उत्पन्न कर रहे थे जैसे भूख से छिपकली की पूँछ की तरह बिलबिलाते इन्सान दम तोड़ चुके हैं और बाद में गिद्ध, कौवों तथा शिकारी कुत्तों ने उनके तमाम मांस को खा लिया हो, फिर कोई क्रूर व्यक्ति नर-कंकालों को खड़ा करके चला गया हो।

हर किसान का चेहरा उदास था। वे सूरज उगने के पहले स्वच्छ आकाश की ओर प्यासी आँखों से इसलिए देखा करते थे कि कहीं इन्द्रधनुष दिख जाय और सायंकाल वे सूरज की किरणों मे लालिमा इसलिए खोजा करते थे कि लालिमा दिख जाने पर वर्षा अवश्य होगी। नदियों मे बाढ भी आयेगी।

इस अकाल में गैले बाबा का उत्साह थोड़ा भी कम नहीं हुआ। भूरसिंह का सिर फोड़ने के पश्चात् कारिन्दे उसे खूँखार समझने लगे और किसान खूब प्यार करने लगे। हरखा आदर करने लगी। हर रात वह चुपके से उसे दो मोटी-मोटी आटे की रोटियाँ बनाकर दे आया करती थी। वह उसे याद दिलाने हेतु सदा कहती थी कि भूरसिंह उस पर नजर गड़ाये रहता है। मुझे उससे डर लगता है।

"यदि इस बार वह तुमसे छेड़खानी करे तो मुझसे कह देना, मैं उसे जान से मार दूँगा।"

हरखा को गैंले की इस बात से बड़ी शान्ति मिलती थी। वह तो उसे अपना वरदान समझती थी। मास्टर की स्मृति अब उसके हृदय-पटल से धीरे-धीरे धुंधली होती जा रही थी।

आज भी वह हमेशा की भाँति रोटी देने आई। गैंला एक पेड़ के तने के सहारे बैठा-बैठा सो रहा था। आज वह सोता-सोता मुस्करा रहा था। उसकी मुस्कराहट देखकर हरखा भी न जाने क्यों मुस्करा उठी? वह निस्तब्ध पग-ध्वनि करती-करती उसके सामने आकर बैठ गई। गैंला अब भी मुस्करा रहा था, हरखा भी मुस्करा रही थी, हरखा ने आकाश की ओर देखा, वह भी मुस्करा रहा था, तारे भी मुस्करा रहे थे। उसे सारी प्रकृति मुस्कराती हुई जान पड़ी।

काफी देर तक वह निश्चल प्रतिमा बनी गैंले के सामने बैठी रही। यकायक आहिस्ते से पुकारा, "गैंला"" अरे ओ गैंला""।"

"कौन है? अरे तू, रोटी लाई है?"

"हाँ, यह ले रोटियाँ!"

"ओह! मैं बहुत भूखा हूँ।" वह रोटियाँ खाने लगा। कौर को हलक से उतारते हुए कहने लगा, "सुना है, गाँव में अकाल पड़ गया है। गाँव वालों की नजरें मुरूट, घीया भाटा और मुलतानी मिट्टी की ओर लगी हुई है। क्या यह सच है?"

"हाँ, यदि अब दस-बीस दिन बरखा नहीं हुई तो हम सबका यही हाल होगा। हमें कोड़पे की छालों पर ही जीवित रहना पड़ेगा।"

'ऐसा बुरा जमाना नहीं आयेगा।" गैंले ने दृढ़ता से कहा।

"क्यों?" आश्चर्यचकित हो गई हरखा।

"मैंने अभी-अभी सपने मे तेरी आँखों में काजल देखा। तू जानती नही है।"

"तीतर पंखी बादली, विधवा काजल रेख
आ बरसे, वा घर करे, तामे मीन न मेख*

"गैला ! पर मैंने तो काजल नही डाला, देख ले मेरी आँखें। गैले ! मैं पाप नही कर सकती, पाप करते मेरा रोम-रोम डरता है।" उसने बात को बड़ी चतुराई से बदला, "आज मैंने सवेरे इन्द्र-धनुष देखा।"

गैला मुस्करा पड़ा फिर बोला।
"उगन्तरो माछलो, आथम तेरो भोग,
डक कहे हे भड्डली, नदिया चढ़सी गोग।"▭
अब जरूर वर्षा होगी। और वह जल्दी-जल्दी कौर उगलने लगा।

हरखा धीरे-धीरे वापस आ रही थी। गैले ने जो काजल-रेख की बात कही उससे उसका मन भारी हो गया था। उसे अन्धकार मे अपना दुल्हिन-सा सोलह-शृंगार किया हुआ चेहरा दिखाई पड़ा। वह अपने रूप पर स्वयं मोहित हो गई, "काश भगवान उसके चूड़ले के शृंगार को नही छीनता तो क्या वह पूगल की पद्मिनी से कम फूटरी-फरी होती ? उसके चेहरे से तो रूप टपक रहा है।"

स्वप्न भंग हो गया। किसी ने उसकी कलाई को पकड़कर

---

* उमड़ती हुई घटा और विधवा की आँखों में काजल देखने से स्पष्ट पता चलता है कि घटा बरसेगी और विधवा नया घर बसायेगी, इसमें जरा भी झूठ नही है।

▭ सवेरे इन्द्रधनुष का दर्शन, सन्ध्या के सूर्य की लाली की आभा, दोनों का मतलब है, वर्षा होगी।

चुनौती दी, "अब बोल हरामजादी, आज तेरा गर्व चूर करके ही छोड़ूँगा।"

"कौन भूरसिंह ?"

"हाँ भूरसिंह, बोल अब भी अकड़ दिखायेगी या....।"

"नीच ! कमीने ! तेरी अपनी कोई माँ-बहिन है या नहीं।"

घोर जंगल में हरखा की आवाज गूँजकर ध्वनित-प्रतिध्वनित हो उठी। उसकी आँखों में आँसू उतर आये। कहते हैं, क्रोध में आँखों से अश्रु नहीं, खून बरसता है और हरखा की आँखों से बिल्कुल लाल खून ही बरस रहा था।

"मेरी माँ-बहिन मेरे घर पर बैठी, तू उनकी चिन्ता क्यों कर रही है।....बोल राजी से....।" उसकी वासना अन्धी हो रही थी।

"धड़ाक्....।" एक चांटा हरखा ने उसके गाल पर मार दिया।

"छिनाल की यह मजाल....।" कहकर भूरसिंह ने अपनी कमर से वह कटार निकाली जो साँप की जीभ की तरह लपलपा रही थी, किसी बेबस इन्सान का खून पीने। हरखा भय से काँपती हुई पीछे हट रही थी। भूरसिंह उत्तेजना में हिंस्र बना आगे बढ़ रहा था।

वासना और लाचारी का संघर्ष था। आज नहीं, युगों से शक्तिवानों ने लाचारी के अपहरण में कोई कोर-कसर नहीं रखी। इतिहास गवाह है कि राजाओं ने अपने निर्बल राजाओं की धर्म-पत्नियों को तलवार के साये में लाकर उस झूठन को कुत्तों की तरह खाया। कितनी पतित परम्परा है, हमारे पूर्वजों की ? नारी के सतीत्व की पवित्रता शक्ति के सम्बल से हरली जाती है। फिर धर्म उसकी अग्नि-परीक्षा की मांग करता है और उस निरीह आत्मा को अपनी समस्त अभिलाषाओं के लिये अग्नि में जल मरना होता है।

हरखा उस अग्नि की भयंकर लपटें देख रही थी। राक्षस

रामायण के कुम्भकरण जैसे अपने लम्बे-चौड़े हाथ फैलाये उसकी ओर बढ़ रहा था कि राम ने पीछे से तीर मारकर कुम्भकरण को अचेत कर दिया ।

हरखा ने देखा, "यह तो गैला लगता है ।"

भय के आवेश मे वह गैले से आबद्ध हो गई ।

लोहे से लोहा टकराने से जिस पवित्र आग का जन्म होता है, उसी प्रकार भगवान के सताये दो हृदय के मिलन पर महान् प्रेम की ज्वाला का जन्म होने लगा था । दोनों पर भगवान का कोप था । एक पर अत्याचार था कि उसे पागल बना दिया और दूसरे पर था कि उसका सुहाग छीन लिया । विधाता अपने विधान की उपेक्षा कर सकता है पर हृदय अपने विधान की उपेक्षा कभी नही कर सकता।

गैला भयभीत हरखा को अपने आलिंगन मे आया देख विह्वल हो उठा । उसके मुलायम केशों पर हाथ फेरकर उसके अश्रुओ को अन्धकार मे देखने का प्रयास करने लगा । एक मोहक वातावरण की सर्जना हो गई । सहस्रो दीप उस प्रांतर मे जगमगा उठे । कुछ देर तक वातावरण ठहरा रहा । हरखा के कांपते हुये होठों ने कहा, "गैला, तू देवता है ।"

"डर नही, मैं··· मैं इस पाजी के बच्चे को···।" और गैला एक दम भयानक हो उठा । वह भूरसिंह को घसीटता हुआ उस झाड़ी के नीचे ले गया जिसे लोग भूत की झाड़ी कहते है । वहाँ उसने अपने दोनो हाथ से उसका गला दबाकर झाड़ी पर फेंक दिया ।

रात भर हरखा सो नही सकी । तरह-तरह की आशंकाओ से कांपती रही ।

× × ×

तड़के ही गाँव में यह बात हवा की तरह फैल गई कि भूरसिंह भूत की झाड़ी पर मरा पड़ा है। गाँव में एक सनसनी पैदा हो गई। सुजानसिंह अपने साथियों के साथ वहाँ गया। उसके साथ गाँव की भीड़ थी जो भूत के डर से वहाँ जाने को तैयार नहीं थी। हरखा का तो दम ही निकल गया था। उसके आगे तो फाँसी का फंदा घूम रहा था, "आखिर गैले ने उसे मार ही दिया, भूरसिंह! अच्छा ही किया, ऐसे दुष्ट इस गाँव में रहते तो न जाने कितनों की बहू-बेटियों को खराब करते। मर गया गड़-खड़ मिटी (निर्भय होना)।

चौधरी इस घटना से चिन्तित हो उठा। भूरसिंह की मौत न जाने कितने निर्दोष गाँव वालों को पिटवायेगी। प्रबन्धक ठाकुर जिस किसी को अपना दुश्मन समझेगा, उसे सदेह के जुर्म में कैद कर गधे की तरह मारेगा।

चौधरी भी भूत की झाड़ी को देख रहा था। ठाकुर के चाकर भूरसिंह की लाश को काँटों में से खींच रहे थे जिससे भूरसिंह की चमड़ी जगह-जगह छिलती जा रही थी। खून रिसने लगा था। उपस्थिति चेहरों पर आतंक छा गया था।

"मर गया।" जोर की आवाज आई।

सबने घूमकर देखा—गैला खड़ा-खड़ा अट्टहास कर रहा है।

कई आदमी एक साथ चिल्ला उठे, "गैला!"

"मर गया, झाड़ी के भूत ने इसे मार दिया, मैंने इसे मार दिया,''' मैंने।" वही भयानक अट्टहास।

ठाकुर का कारिन्दा कानसिंह चीखा, "पकड़ो हरामजादे को, टुकड़े-टुकड़े कर दो।"

उसकी आवाज पर चार लठैत दौड़े। गैला भी पैंतरा बदलकर खड़ा हो गया। चौधरी ने भगवान से प्रार्थना की। ढोलकी ने गैले के लिये गाँव के भैरू को प्रसाद बोला।

एक लठैत ने कसकर गैले पर लट्ठ मारा। गैला अपनी नियत जगह से हट गया। लठैत का लट्ठ इतने जोर से जमीन पर पड़ा कि उसका लट्ठ उसके हाथ से छूट गया। गैले ने झपटकर उस लट्ठ को उठा लिया और पलक झपकते उस लट्ठ से उसी लठैत का सिर लाल कर दिया। उसकी ही लाठी, उसका ही सिर।

अब क्या था?

वे तीन और गैला अकेला। बड़ी भयानक लड़ाई हुई। कानसिंह चीख-चीखकर दहाड़ रहा था, मार दो, जिन्दा न रहने पाये।" लेकिन जब उसने देखा कि उनके लठैतों के सिर से खून बह रहा है और गैला खड़ा-खड़ा अट्टहास कर रहा है तब उसकी रग-रग फड़की। वह कुछ देर तक अट्टहास सुनता रहा जैसे गैले के अट्टहास में उस प्रजा के एक आदमी की शक्ति का आभास है जो चार अत्याचारियों को सरलतापूर्वक धराशायी कर सकती है। जैसे गैले का अट्टहास सभी किसानों को कह रहा है, यह है तुम्हारी अजेय शक्ति जब इंकलाब करने का आह्वान करती है तो इसी प्रकार अत्याचारियों को समाप्त कर देती है। सिर्फ तुम अपनी ताकत को पहचानो और जानो कि तुम्हारी भुजाओं में कितना बल है, तुम्हारी हड्डियों में कितने वज्रों के निर्माण की शक्ति है? सिर्फ तुम जागो और अपने अस्तित्व को पहिचानो........।

"धाँय........"

सनसनाती गोली गैले के सीने से पार गई। चौधरी ने तड़पकर कानसिंह को टोका, "यह अत्याचार है।"

सारा जन समूह कह उठा, "यह अत्याचार है।" पृथ्वी और गगन कह उठे, "यह अत्याचार है।"

और गैले के चारों ओर जमा हो गई।

कानसिंह अपनी रायफल के घोड़े को ठीक करता हुआ बोला, "यह अत्याचार कैसे है ?"

"यह सरासर जुल्म है ?" तीर की भाँति ढोलकी सीना तानकर उसके आगे खड़ी हो गई, "यह भूत की झाड़ी है, रात को जो यहाँ आयेगा, वह कभी नहीं बचेगा ?"

"यह झूठ है।"

"यह झूठ नहीं, तू झूठ है।" ढोलकी गर्जी।

चौधरी ने ढोलकी को पीछे ढकेला, "कानसिंह ! हमारे गाँव के कई विद्रोही इसी झाड़ी पर मरे हुए पाये गये थे; फिर भूरसिंह मर गया तो क्या हुआ ? यह कोई नई बात नहीं ?"

झाड़ी उन तमाम मूर्खों पर खिलखिलाकर हँस पड़ी, "तुम सब नादान हो, न मैं कोई भूत की झाड़ी हूँ और न कोई पलीत को। अरे तेरा ठाकुर जब अपने किसी शत्रु की हत्या कर देता, उसे वह इस झाड़ी पर फेंक जाता और कह देता कि इसे भूत ने मार डाला है। गाँव भूत-पलीतों की कहानियों पर विश्वास करता ही है। साथ ही सारा गाँव उस राक्षस की इस बात पर भी भरोसा कर लेता था।"

"पानी" पानी।" गले ने अस्पष्ट स्वर में कहा।

हरखा गोली की आवाज सुनकर चौंक उठी थी। उसे ऐसा महसूस हुआ कि गोली उसके ही सीने में लग गई है। उसने अपना कलेजा अपने दोनों हाथों से पकड़ लिया। वह डागले (छत) पर खड़ी-खड़ी देखने लगी। भूत वाली झाड़ी के चारों ओर बड़ी भीड़ जमी हुई थी। वह आशंका से वाचाल हो उठी।

तभी एक लड़का दौड़ा-दौड़ा आया, "हरखा, ऐ हरखा !"

"क्या है ?"

"जल्दी से पानी दे।"

"क्यों ?"

"गैले के गोली लग गई है।"

"गैले के गोली लग गई।" जैसे उसे उस छोकरे की बात पर विश्वास न आया हो।

"हाँ।"

वह पानी लेकर भागी। भीड को चीरती हुई वह कह रही थी, "पानी-पानी......?"

गैले का सीना खून से लथपथ था। उसके सिरहाने ढोलकी बैठी-बैठी उसका सिर सहला रही थी। पानी का लोटा चौधरी को देकर हरखा उसके पाँवों में बैठ गई। उसकी आखें तरल थी। वह उसके पाँव सहलाने लगी।

"लो, पानी पीओ, गैला"।" चौधरी का स्वर भर आया।

गैला बोल न सका। उसने अपना मुँह फाड़ दिया। चौधरी ने धीरे-धीरे पानी उसके मुँह मे डाला। पानी पीकर वह मुस्कराया। उसकी आँखो के आँसू भी मुस्कराये। जैसे वह कह उठा, "हरखा मैं तेरा ही इन्तजार कर रहा था। गैले को मानव की सच्ची प्रेम भावना तूने ही दी थी, इसलिए वह तुम्हें कभी भी नहीं भूलेगा।"

और धीरे-धीरे गैले की आँखें चौधरी पर जम गई। एक साहस भरी मुस्कान उसके होठों पर नाच उठी जैसे सूरज के डूब जाने के बाद क्षितिज के अधरो पर नाचती है, लाल बिल्कुल लाल, दम और साहस भरी।

चौधरी रो पडा, "गैला-!" एक करुण-रोदन छा गया। उस वातावरण मे। ढोलकी के आँसू गैले के मुँह पर गिर रहे थे और हरखा उसके कदमो पर गिरकर सिसक रही थी। एक ऐसे करुण वातावरण की सृष्टि हो गई थी जो दिलों को हिला रही थी। जैसे गाँव का कोई सबसे प्यारा मानव चला जा रहा हो और गैला धीरे-धीरे दम तोड़ने लगा।

× × ×

उसके तीसरे दिन ही लालकुँवर को केन्द्र की ओर से यह फरमान प्राप्त हुआ।

श्री ठाकुर....

ठिकाणा गाँव ....

आपको इत्तिला दी जाती है कि आपके ठिकाणे का इन्तजाम दिन-ब-दिन बिगड़ता जा रहा है जिससे रैयत मे विद्रोह की चिनगारियाँ फैल रही हैं और जिससे यह भी डर हो रहा है कि कहीं अमन-चमन को धक्का न लगे। इसलिए केन्द्र ने यह तय किया है कि मौजूदा हालात देखते हुये इस ठिकाणे को केन्द्र अपने प्रबन्ध में लेती है जिसकी एवज मे ठिकाणेदार को परवरिश के लिए इतने रुपये.... सालाना खर्च दिया करेगी।

दस्तखत
दीवान, बीकानेर राज्य

बड़ी मछली छोटी मछली को निगल गई।

× × ×

गैले को जहाँ जलाया गया था, वहाँ गाँव वालों ने एक-एक ईंट जमा करदी और यह तय किया गया कि इनसे गैले की याद का एक चबूतरा बनाया जाय अथवा छतरी ताकि गाँव वाले उस महान् आत्मा को कभी न भूले जिसने उस अत्याचारी को मारा जो गाँव की इज्जत को इज्जत नहीं समझता था, उसे कलंकित करने की चेष्टा करता था।

उस चबूतरे पर पहले-पहल तो सभी दीपक जलाया करते थे, बाद मे अकेली हरखा रह गई थी जो हर साँझ-सवेरे घी का दीया जलाया करती थी। समाधि पर वह ज्यों ही दीया रखती त्यों ही टप से दो आँसू उसके घी मे मिल जाते थे। प्रकाश और तेज हो जाता था। वेदना और मुखरित हो उठती थी, जैसे रोशनी कह रही हो कि सारे सम्बन्धों से भी अधिक गहरा सम्बन्ध होता है मानवीयता का........ संवेदनशीलता का।

: १६ :

भीटिया प्रजा परिषद् का सदस्य बन गया। उसने भी खादी का कुर्ता व धोती पहन लिये। उसमें भी देश के सेनानियों की सारी शक्ति आ गई। उसका खून गर्म हो उठा, कुछ करने के लिये।

आज प्रजा परिषद् की बैठक थी। यह तय किया जाने वाला था कि किन-किन व्यक्तियों को कांगड गाँव भेजा जाय। काफी वाद-विवाद के बाद निम्नलिखित नाम तय किये गये—

श्री स्वामी सच्चिदानन्द
श्री केदारनाथ एम.ए. (प्रोफेसर)
श्री हँसराज
श्री दीपचन्द
श्री मोजीराम
श्री गंगादत्त रंगा
श्री रूपाराम और श्री भीटिया।

बैठक समाप्त हो जाने के बाद भीटिया मास्टर के पीछे-पीछे उत्साह के साथ चल रहा था। उसका मन कर्तव्य के प्रति सजग होकर नये जीवन का अनुभव कर रहा था।

मास्टर ने आगे से पुकारा, "भीटिया!"

"हाँ, मास्टरजी।"

"कल से तेरा नया जीवन प्रारम्भ होगा।"

"आपकी कृपा से।"

वे दोनों बराबर आ गए।

एक साधारण बिस्तरा और पहनने के लिए अच्छी-से-अच्छी खादी।

इन बढ़िया वस्त्रों के लिये कई बार उसके साथियों व मित्रों ने टोका भी था उसने बहुत संयत होकर मधुर स्वर में कहा, "मैं ऐसा नहीं हूँ और न देवत्व को प्राप्त किया हुआ इन्सान कि मैं उस अच्छाई का त्याग कर दूं जिसने मनुष्य के सौन्दर्य को निखारा है। जो वस्तु मानवी-सौन्दर्य की पोषक है, उसे मेरे जैसा साधारण पुरुष त्याग नहीं सकता।"

"लेकिन इसका जन-साधारण पर प्रभाव""?" उसका एक मित्र कहता-कहता बीच में ही रुक गया जैसे उसका अन्तःकरण उसकी आवाज का साथ नहीं दे रहा हो।

मास्टर की गंभीरता पूर्ववत् बनी रही, "जनसाधारण पर वस्त्रों का प्रभाव नहीं पड़ता। भगवे वस्त्र कितने ढोंगी पहनते हैं? लाखों। तो क्या उन कपड़ों के कारण ही जनता उन्हें महात्मा समझने लगती है? यह कहना सर्वथा गलत है। भला-बुरा प्रभाव प्राणी के आचार विचार से पड़ता है। मनुष्य के पास नैतिक बल होना चाहिये सच्चाई और ईमानदारी होनी चाहिये। ये ही सब उसका सही मूल्यांकन है। रही खादी की बात तो अभी खादी पहनना भी हमारे आन्दोलन का एक अंग है, इसलिये सब को खादी पहननी ही चाहिये।"

मास्टर बिस्तरे पर सुस्ताने लगा। उसकी आँखें थकान से भर हुई जा रही थी। सोये-सोये वह बड़बड़ा रहा था, "मनुष्य का सच्चा सुख इसी में है कि वह अपने जीवन को एक उत्कृष्ट और महान् लक्ष्य की पूर्ति में लगाये और आज हमारा प्रथम और महान् लक्ष्य स्वतन्त्रता प्राप्ति का है और उसके बाद सामन्तवाद तथा पूंजीवाद को हटाने का।"

"मैं जाऊँ?" झींटिया ने उसके ध्यान को भंग किया।

"हाँ, तू जा। अरे सुन तो!"

होता है । वे अधिकार उसके अपने हैं, उसे मिलने ही चाहिये और अन्ततोगत्वा वे अधिकार संघर्ष के पश्चात् उसे प्राप्त हो ही जाते हैं । वह अधिकार ही जनता का सत्य है और उस सत्य के बिना कोई भी आन्दोलन सफल नहीं हो सकता । मसलन-हर आदमी को रोटी और कपड़ा मिलना चाहिये या स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है । यह अधिकार हर देश का वह सत्य है, जिसके लिए वह अपना सर्वस्व विसर्जन कर सकता है । मर जायेगा, मिट जायेगा और इस सत्य को लेकर ही छोड़ेगा । लेकर ही क्यों, वह उसे मिलेगा, निसन्देह मिलेगा । लेकिन यदि तुम इस सत्य को छोड़ करके इस बात का नारा लगाओ कि हम शक्तिवान हैं इसलिए दूसरों की स्वतन्त्रता छीनना हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है; तो वह अधिकार दमन से ही प्राप्त होता है । वह असत्य अत्याचार से जीता जाता है और असत्य नित्य नहीं है । इसलिए वह एक-न-एक दिन समाप्त होकर ही रहता है ।"

"लेकिन जो अहिंसा है, वह ?"

"राष्ट्रपति हमारे स्वातन्त्र्य-संग्राम के सेनानी हैं । बापू ने हमें यह नया सत्य दिया है ताकि हमारा सत्य का संघर्ष जारी रहे । पर उसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम अहिंसा का अन्धा-अनुकरण करें । बापू की अहिंसा हमें दया सिखाती, हमारे मार्ग को प्रशस्त करती है । पर मैं अहिंसा के औचित्य को ही स्वीकार करता हूँ । मैं उस अहिंसा से अपने प्रत्येक साथी को हजार कदम दूर रखना चाहता हूँ जो आदमी को विद्रोह-हीन बना दे । मनुष्य को संघर्ष-हीन नहीं बनना चाहिये । संघर्षहीनता का दूसरा नाम ही मृत्यु है । यदि मनुष्य पहले से ही अपने को मृत बना देगा तो भला वह लड़ेगा क्या ? इसलिए मनुष्य की जुझारू प्रवृत्तियों को सदैव जिंदा रखना चाहिये ताकि वह संघर्षशील बना रहे ।"

मास्टर जी का घर आ गया था ।

उसके घर मे सिवाय पुस्तकों के कुछ नहीं था । सोने के लिये

"झोटिया !" मास्टर नितान्त गम्भीर हो उठा, "जनता और सत्ता का संघर्ष एक विचित्र नीति है। जनता को सत्ता से टकराने के पहले अपने संगठन पर दृष्टिपात कर लेना चाहिए। अपने कार्यकर्त्ताओं का पर्यवेक्षण कर लेना चाहिये कि वे कितने ईमानदार और लगन के पक्के हैं ? उनकी इन दुर्बलताओं का भलीभांति अध्ययन कर लेना चाहिये कि ये अवसरवादी तो नहीं हैं और ये अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के पीछे तो नहीं लड़ रहे हैं? ऐसे व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत दिलचस्पियों को लेकर संघर्ष का बहुत बड़ा अहित कर सकते हैं। जन-आन्दोलन को कुचल सकते हैं।

"दूसरी बात यह है कि आन्दोलन का उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिये। उसका कार्यक्रम ठोस होना चाहिये। स्वराज्य, पूर्ण स्वराज्य, स्वतन्त्रता, आजादी, इन्कलाब के नारे संघर्ष के सही रूप नहीं बन सकते। आन्दोलन का जो उद्देश्य हो, उसी का सीधा लक्ष्य होना चाहिये। हाँ, गलत नेतृत्व आन्दोलन की आग को ठंडा कर देते हैं। इसलिये नेतृत्व की बागडोरें उस व्यक्ति के हाथों में देनी चाहिये जो आन्दोलन, उसके संघर्ष और उसकी प्रतिक्रिया का वैज्ञानिक विश्लेषण कर सकता हो।"

मास्टर के चुप हो जाने के बाद झोटिया ने पूछा, "आन्दोलन के नेता का उस घड़ी क्या कर्त्तव्य हो जाता है ?"

"उसे तो हर वर्ग में चेतना की आग फैला देनी चाहिये। विशेषत: युवकों के बीच। किसान-मजदूर और छात्रों के बीच भी संगठन बनाने के लिए जोर लगा देना चाहिये। जनता की जागृति चेतना को जगाती है और चेतना आन्दोलन को सफल बनाती है।"

"आन्दोलन में सत्य की कसौटी ?"

"प्रश्न बहुत ही गम्भीर है। फिर भी यह व्यवहार में देखा गया कि जो दल अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करता है, वह सदा विजयी

होता है । वे अधिकार उसके अपने हैं, उसे मिलने ही चाहिये और अन्ततोगत्वा वे अधिकार संघर्ष के पश्चात् उसे प्राप्त हो ही जाते हैं । वह अधिकार ही जनता का सत्य है और उस सत्य के बिना कोई भी आन्दोलन सफल नहीं हो सकता । मसलन-हर आदमी को रोटी और कपड़ा मिलना चाहिये या स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। यह अधिकार हर देश का वह सत्य है, जिसके लिए वह अपना सर्वस्व विसर्जन कर सकता है। मर जायेगा, मिट जायेगा और इस सत्य को लेकर ही छोड़ेगा । लेकर ही क्यों, वह उसे मिलेगा, निसन्देह मिलेगा। लेकिन यदि तुम इस सत्य को छोड़ करके इस बात का नारा लगाओ कि हम शक्तिवान हैं इसलिए दूसरों की स्वतन्त्रता छीनना हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है; तो वह अधिकार दमन से ही प्राप्त होता है। वह असत्य अत्याचार से जीता जाता है और असत्य नित्य नहीं है । इस-लिए वह एक-न-एक दिन समाप्त होकर ही रहता है ।"

"लेकिन जो अहिंसा है, वह ?"

"राष्ट्रपिता हमारे स्वातन्त्र्य-संग्राम के सेनानी हैं । बापू ने हमें यह नया सत्य दिया है ताकि हमारा सत्य का संघर्ष जारी रहे। पर उसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम अहिंसा का अन्धा-अनुकरण करें । बापू की अहिंसा हमें दया सिखाती, हमारे मार्ग को प्रशस्त करती है । पर मैं अहिंसा के औचित्य को ही स्वीकार करता हूँ । मैं उस अहिंसा से अपने प्रत्येक साथी को हजार कदम दूर रखना चाहता हूँ जो आदमी को विद्रोह-हीन बना दे । मनुष्य को संघर्ष-हीन नहीं बनना चाहिये । संघर्षहीनता का दूसरा नाम ही मृत्यु है। यदि मनुष्य पहले से ही अपने को मृत बना देगा तो भला वह लड़ेगा क्या ? इसलिए मनुष्य की जुझारू प्रवृत्तियों को सदैव जिंदा रखना चाहिये ताकि वह संघर्षशील बना रहे ।"

मास्टर जी का घर आ गया था ।

उसके घर में सिवाय पुस्तकों के कुछ नहीं था । सोने के लिये

एक साधारण बिस्तरा और पहनने के लिए अच्छी-से-अच्छी खादी।

इन बढ़िया वस्त्रों के लिये कई बार उसके साथियों व मित्रों ने टोका भी था उसने बहुत संयत होकर मधुर स्वर में कहा, "मैं देवता नहीं हूँ और न देवत्व को प्राप्त किया हुआ इन्सान कि मैं युग की उस अच्छाई का त्याग कर दूं जिसने मनुष्य के सौन्दर्य को निखारा है। जो वस्तु मानवी-सौन्दर्य की पोषक है, उसे मेरे जैसा साधारण पुरुष त्याग नहीं सकता।"

"लेकिन इसका जन-साधारण पर प्रभाव....?" उसका एक मित्र कहता-कहता बीच में ही रुक गया जैसे उसका अन्तःकरण उसकी आवाज का साथ नहीं दे रहा हो।

मास्टर की गंभीरता पूर्ववत् बनी रही, "जनसाधारण पर वस्त्रों का प्रभाव नहीं पड़ता। भगवे वस्त्र कितने ढोंगी पहनते हैं? लाखों। तो क्या उन कपड़ों के कारण ही जनता उन्हें महात्मा समझने लगती है? यह कहना सर्वथा गलत है। भला-बुरा प्रभाव प्राणी के आचार विचार से पड़ता है। मनुष्य के पास नैतिक बल होना चाहिये, सच्चाई और ईमानदारी होनी चाहिये। ये ही सब उसका सही मूल्यांकन है। रही खादी की बात तो अभी खादी पहनना भी हमारे आन्दोलन का एक अंग है, इसलिये सब को खादी पहननी ही चाहिये।"

मास्टर बिस्तरे पर सुस्ताने लगा। उसकी आँखें थकान से बन्द हुई जा रही थीं। सोये-सोये वह बडबडा रहा था, "मनुष्य का सच्चा सुख इसी में है कि वह अपने जीवन को एक उत्कृष्ट और महान् लक्ष्य की पूर्ति मे लगाये और आज हमारा प्रथम और महान् लक्ष्य स्वतन्त्रता प्राप्ति का है और उसके बाद सामन्तवाद तथा पूंजीवाद की समाप्ति का।"

"मैं जाऊँ?" भौंटिया ने उसके ध्यान को भंग किया।

"हाँ, तू जा। अरे सुन लो!"

भीटिया वापस उसके पाँव तले बैठ गया।

'आज से तू परिषद का वह नवयुवक हो गया है जिसका जीवन अब वैयक्तिक हितों से आगे समष्टि के हितों से भी अपना गहरा सम्बन्ध रखेगा, इसलिए तुझे याद रखना होगा कि तू जियेगा तो जनता के लिए और मरेगा तो जनता के लिए।"

"मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं अपने तमाम व्यक्तिगत हितों का परित्याग कर दूँगा।"

"इसका मतलब यह नहीं है, कि तू अपने तमाम व्यक्तिगत कर्त्तव्यों को ही भूल जायेगा। जैसे पत्नी के प्रति तेरा कर्त्तव्य, माँ-बाप, भाई-बन्धु के प्रति तेरा कर्त्तव्य। ऐसे कर्त्तव्यों के साथ सत्य का आधार रखना। यही सत्य का आधार तुम्हें पथ-विमुख नहीं करेगा।"

हवा के झोंके से फटाक की आवाज से खिड़की खुली और उस खिड़की की राह प्रकाश-पिंड कमरे में गिरा जिससे कमरा प्रकाशमान हो गया क्योंकि अब नया जीवन आ रहा था।

× × ×

भीटिया जब घर पहुँचा। उस समय घरों के दीये जल चुके थे। उसकी पड़ोसिन छगा अपनी चौकी पर बैठी बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसकी मुद्रा से साफ जाहिर हो रहा था कि वह सख्त नाराज है।

भीटिया को देखते ही वह उबल पड़ी, "अरे वाह भइया, वाह! तुम इतने मन के मैले होवोगे, यह मैंने कभी सपने में भी नहीं जाना था।"

भीटिया अवाक्, "क्या बात है छगा?"

"अपने मन से पूछो कि तुमने मुझे कौन-सी बात नहीं बताई है?" वह अपने निचले होंठ पर तर्जनी रखकर खड़ी हो गई।

भीटिया ने अपने सिर पर हाथ फेरा। सोचा भी पर उसकी

समझ में कुछ भी नहीं आया कि मैंने ऐसी कौन-सी बात छिपा ली है जिसमें छगा की गहरी दिलचस्पी हो सकती है। अन्त में वह निर्णय करता हुआ बोला, 'मैंने तुमसे कोई भी ऐसी बात नहीं छिपाई है। तुम्हें तो केवल वहम हो गया है।'

'अरे जा-जा ! मेरे भाग्य भी पत्थर के नीचे नहीं है। घर बैठे-बैठे सब जान गई हूँ।"

"क्या ?"

"तुम्हारी घरवाली को।"

"पर मैं तो कुंवारा हूँ।"

"अभी हो, कल को किसी से अपने हाथ पीले करोगे। कभी कहा तक भी नहीं कि मैं ढोलकी...।"

"ढोलकी !" उसके होंठों पर मुस्कान नाच उठी।

"हाँ, ढोलकी।" छगा ने आँख का संकेत किया, "भीतर बैठी है। तुम्हें देखकर लजा गई। हाथों से अपना मुंह छुपा लिया। बड़ी लजवन्ती है, बडी फूटरी (सुन्दर) है।"

"पर है कहाँ, उसे घर में भेज दे, और हाँ, काका ?"

"तुम्हें अडीकते-अडीकते (प्रतीक्षा करते-करते) उकता गये थे, इसलिए बाजार चले गये हैं।"

भीटिया ने ताला खोलकर छगा को आवाज दी, "छगा बहिन ! ढोलकी से कह दो कि वह सामान लेकर आ जाए।"

ढोलकी सिर पर बिस्तरा रखे और बगल में गठरी रखे धीमे-धीमे पग उठाती हुई घर में घुसी। नया घर, भीटिया और एकान्त। उसका रोम-रोम सिहर उठा।

जब छगा और भीटिया बातचीत कर रहे थे तो वह अपने मन को देखने की तीव्र उत्कण्ठा को नहीं रोक सकी थी। अतः उसने उसको किवाड़ की ओट से देख ही लिया था, खद्दर की सफेद धोती,

खद्दर का सफेद कुर्ता और बहुत अच्छे छोटे-छोटे नये ढग के कटे बाल। वास्तव में भीटिया बिलकुल ही बदल गया था।

भीटिया भी ढोलकी को देखकर कुछ-कुछ शर्मा ही गया। रुकते-रुकते बोला, "आखिर तू आ ही गई ?"

ढोलकी का चेहरा लाज से लाल होने लगा। निचला होठ कुछ कहने को फड़का पर कुछ कह नहीं सकी।

'बोलती क्यों नही ?" भीटिया ने आगे बढकर उसका हाथ पकड लिया। शान्त पानी मे किसी ने कंकर फेंककर उसमें कपकपी पैदा कर दी हो, वैसी ही कम्पन उसके तन-मन मे उत्पन्न हो गई।

उसने अपना हाथ छुड़ा लिया, 'मेरा जी नही माना।"

"तेरा जी बड़ा चचल है।"

"नही, तेरी ओलू (याद) ही खूब आती थी।"

'मेरी ओलू, क्यों ?"

इस प्रश्न का उत्तर देने मे ढोलकी ने सदा अपने को असमर्थ पाया। वह अपने पाँव के अगूठे से जमीन कुरेदने लगी। कुरेदते-कुरेदते उसने तमक कर उलाहना दिया, "लेकिन तेरी तरह मैं मोह चोर तो नही हूँ। कभी चिट्ठी में मुझको दो हरफ (शब्द) भी नहीं लिखे।"

"तू ठहरी बडी सीधी-सादी, तुझे कैसे लिखता ? काका तो जानता है कि तू मेरी बहू और बहू को ..."

"बड़ा मुसियाखोर (बहानेबाज) हो गया है।"

"यहाँ की पून (हवा) ही ऐसी है।"

"तब तू मेरे संग चल।" ढोलकी ने भीटिया के हाथ पकड़ लिये। दोनों कुछ देर तक एक दूसरे की आँखों की गहराई में तैरते रहे। ढोलकी के अन्तर की विचार-शून्यता स्पष्ट झलक रही थी पर भीटिया का विवेकपूर्ण मानस कब शान्त रहने वाला था। वह सम्भलता हुआ बोला, "गाँव का क्या हाल-चाल है ?"

"अच्छा है ।"

"ठाकुर की ठकुराई तो खत्म हो गई।"

"हाँ, गैना भी मर गया ।"

"गैना मर गया ।" एक झटका-सा लगा भीटिया के अन्तःकरण पर ।

'हाँ, उसे ठाकुर के आदमियों ने गोली मार दी ।'

"गोली मार दी आखिर क्यों ?" उसका स्वर तेज हो गया।

"उसने भूरसिंह को जान से मार दिया ।"

एक विकट पहेली बनती जा रही थी ।

"उसने भूरसिंह को जान से क्यों मार दिया ?"

"उस नीच ने हरखा की इज्जत पर डाका डालना चाहा ।"

"फिर ?"

"गैने ने उसे जान से मारकर भूत की झाड़ी पर फेंक दिया। सवेरे इस बात की डोंडी-सी पिट गई । सारा गाँव उस ओर उमड़ पड़ा । गैना भी आ गया । उसने जोर से हँसकर कह दिया कि उसी ने भूरसिंह को मारा है । फिर क्या था? चार लठैत उस पर शिकारी गडकों (कुत्तों) की तरह झपटे, गैले ने सबको छठी का दूध याद करा दिया । तब कानसिंह ने उसे गोली मार दी। गैना मर गया। भीटिया! मरते समय भी उसके चेहरे पर हँसी थी । मुझे तो उसकी बहुत ही ओलू आती है ।' ढोलकी का स्वर मद्धिम होकर टूट गया।

'हम शीघ्र ही इसके बारे में राजा जी को लिखेंगे ।"

खट्‌खट्‌, खटा-खट दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी ।

"कौन है ?" भीटिया उठकर द्वार की ओर बढ़ा ।

"मैं बेटा, मैं·····।"

"काका।" भीटिया ने द्वार खोल दिया। काका के सूखे चेहरे पर मुस्कान थी । ज्योंही उसने पाँव चूमे त्योंही उसके मुख से आशीर्वाद निकल पड़ा, "दिन-दिन ज्योति सवाई हो बेटा तेरी ।" -बात बदलते हुए उसने पूछा, "रोटी-बोटी जीमी (खाई) कि नहीं ?'

"नहीं, मैं तो ढोलकी से गाँव का हाल-चाल पूछ रहा था। खाने का ध्यान रहा ही नहीं। इतने दिनों में गाँव बहुत कुछ बदल गया है, काका ?"

दोनों आमने-सामने बैठ गये। ढोलकी उनसे काफी दूर हटकर बैठ गई। उसका मुँह भी दूसरी ओर था।

"दुनिया तो बदलती ही रहेगी। आज मैं गाँव के बारे में मास्टर जी को अच्छी तरह बताऊँगा। गेले की मृत्यु का विरोध होना चाहिये अन्यथा इन कारिन्दों का हौंसला बढ़ जायेगा। हौंसले के साथ उनके अत्याचार भी बढ़ जायेंगे।

"मैं भी यही सोच रहा था।"

"फिर, मैं तो आज मास्टरजी के यहाँ ही रहूँगा। तू और ढोलकी खाना ले आना, 'छोटू-मोटू जोशी' की दूकान से, समझे।" ढोलकी!" काका ने उठते हुए ढोलकी को पुकारा, "मेरे साथ चलना चाहती है तो चल।"

ढोलकी ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने अपनी गर्दन झुकाली।

'समझा, तू मेरे साथ नहीं चलेगी। भाई! क्यों चलने लगी ?" काका ने उसे ऐसी अजीब दृष्टि से घूरा कि ढोलकी की गर्दन पर पसीना चमक उठा।

चौधरी बाहर चला गया।

"अच्छा, मैं अभी तेरे लिये खाना ले आता हूँ।" झोटिया बाहर चला गया।

अब ढोलकी अकेली रह गई थी। अकेले का सूनापन उसे असर नहीं रहा था बल्कि उसकी रग-रग को पुलकित कर रहा था।

झोटिया खाना लेकर आ गया। द्वार पर कुंडी चढ़ाकर उसने आँगन में खाना रखा, "ढोलकी, जाकर वह थाली ले आ।"

ढोलकी थाली लेकर आ गई।

"मैं तेरे लिये 'छोटू-मोटू जोशी' का रसगुल्ला लाया हूँ। बहुत ही बढ़िया होता है।"

"........।" ढोलकी ने एकदम मौन धारण कर लिया।

"अरे! बोलती क्यों नहीं ?"

बड़ी मुश्किल से ढोलकी ने कहा, "मुझे लाज आती है।" उस लाज शब्द ने ढोलकी के सौन्दर्य में नये आकर्षण को जन्म दिया।

"ढोलकी! कल मैं कांगड गाँव जाऊँगा, वहाँ के गरीब किसानों का दुख-दर्द सुनने। वहाँ के ठाकुर का अत्याचार हद से अधिक बढ़ गया है। हमें उसके विरुद्ध एक नारा बुलन्द करना है, एक लड़ाई शुरू करनी है।"

"लड़ाई, नहीं, लड़ाई मत करना।"

"ढोलकी! मास्टर जी का कहना मानना ही होगा।"

"लौटोगे कब?"

"बस, शाम तक।"

"लौट ही आना।" मीठी मुस्कान के साथ ढोलकी उसके दोनों कन्धों को अपने हाथों से पकड़कर झूल गई।

खाना खाने के बाद भीटिया ने अपनी खाट घर के बाहर बिछा ली और ढोलकी की आँगन में।

भीटिया ने सोने से पहले ढोलकी से पूछा, "आजकल हरखा क्या करती है ?"

ढोलकी ने उत्तर दिया "साँझ-सवेरे गैले की समाधि पर दीया करने जाया करती है। बहुत कम बोलती है। मुस्कते तो मैंने देखा ही नहीं है।" इधर-उधर मेहनत-मजूरी करती है।

भीटिया हरखा के प्रति करुणा से भर आया। सहसा उसे हरणकुंवर की याद हो आई। उसने कहा, "ढोलकी।"

"क्या ? तू उदास क्यों हो गया ?"

"बेचारी कृष्णकुंवर मर गई, उसे कुसूम्भो पिला दिया गया, मरने के लिए मजबूर कर दिया घर वालों ने।"

तब ढोलकी ने कहा, "बेचारी कृष्णा लालकुंवर जैसी दुष्ट नहीं थी।"

: २० :

सवेरा होने के कुछ देर पूर्व ही भींटिया की नींद उचट गई। यह उठकर अपनी उनींदी पलकों मे जागरण का आह्वान करने लगा। अंधेरे की धूमिल अलकें अब भी ऊषा रानी के आनन पर आच्छादित थी। प्रतीची के छोर पर भोर का तारा झिलमिला रहा था। पुरवैया का मदिर स्पन्दन तरंगायित होकर तन मे गुद-गुदी उत्पन्न कर रहा था।

वह उठा और ढोलकी के सिरहाने बैठ गया।

ढोलकी प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न थी। धनुषाकार कटी फाक की तरह उसके स्वर्णिम-अरुणिम अधरो पर यौवन की लुनाई चमक रही थी। वह निर्निमेष दृष्टि से देखता रहा। फिर उसने अपने अधीर मन से ढोलकी की हथेलियों को देखा। हथेलियाँ खुरदरे पत्थर की तरह थी। उसने हथेलियों की जहाँ-तहाँ उखड़ी चमड़ी मे श्रम के महान् देवता के दर्शन किये। वह अज्ञात श्रद्धा से कुछ देर के लिये नतमस्तक हो गया।

इसके बाद उसने ढोलकी को जगाने के लिये झिंझोड़ा। वह ऊंघ करके रह गई।

"यह नींद में मग्न है। चिन्ताओं से मुक्त करने वाली इसी नींद को हर व्यक्ति कामना करता है। लेकिन कल से''' !" भीटिया सोच बैठा। "कल से इसकी सुख देने वाली नींद को चिन्ताओं के सांप चारों ओर से घेर लेंगे और अपने जहरीले फनों से उसे एक पल के लिये भी नींद नही लेने देंगे।

उसे कोने में फैले अन्धकार में दैत्य की विकराल आकृति दीख पडी। वह दैत्य इतनी भेद-भरी हंसी हंस रहा था जैसे वह कह रहा था—ए मनुष्य ! तेरे सुख के क्षण बहुत ही कम हैं और दुख के निरन्तर। तू स्वतन्त्रता का सेनानी है, कठोर कर्त्तव्य ही तेरा धर्म है।

भीटिया को दैत्य की आकृति धुंधली होती हुई जान पड़ी और देखते-देखते उस अन्धकार के आवरण को भेदता हुआ प्रकाश सम्पूर्ण निर्मलता लिये चमक उठा। उस प्रकाश में मास्टर का दिव्यानन सूर्य की भांति प्रकाशमान हो उठा, "उठ भीटिया, तेरे लिये यह मोह-बन्धन हितकर नही। जब मनुष्य व्यक्तिगत स्वार्थों का सम्मोह छोड़कर समूह के हितों के लिये संघर्ष करता है तो उसे अपने व्यक्ति का किंचित शोषण भी करना पड़ता है। तुझे भी अपने व्यक्ति की प्रबल महत्वाकांक्षा का परित्याग करना होगा। उठ, जाग ! देख, प्रभात हो गया है, प्रभात। तेरे नये जीवन का संघर्षमय प्रभात।"

भीटिया ने आवेश में ढोलकी को जगा दिया। वह हड़बड़ा उठी, 'क्या है ? ऐसे क्यों झिंझोड़ रहा है?" उसने अपने दोनों हाथों मे उसके कन्धे पकड़ लिये।

"मैं जा रहा हूं !" उसने दृढ़ता से कहा।

ढोलकी के मन से निद्रा का बादल हट गया। वह सावधान होती हुई टूटते स्वर मे बोली, "कहां जा रहे हो?" उसने अपने दोनों हाथों से भीटिया को पकड़ लिया।

"कोगड़ गांव। ढोलकी आज से तेरा भीटिया तेरा ही नही, उन सभी गरीबों का भी है जिन्हें ये ठकुर व साहूकार रात-दिन सताते हैं।"

"लौटोगे कब ?"

"कह नहीं सकता, ग्राम ग्रादमी ग्रौर जागीरदारों के बीच युद्ध है। कौन जीतेगा ग्रौर कौन हारेगा, कह नही सकता ? लेकिन ग्राखिरी जीत हमारी ही होगी, बिलकुल हमारी।"

"पर तुझे यह बताकर जाना ही होगा कि तू कब तक का पूठा (वापिस) ग्रा जायेगा, नही तो मैं तुझे जाने नही दूंगी।" उसने झीटिया का हाथ कसकर पकड लिया। वे दोनों एक-दूसरे के सामने बैठ गये।

झीटिया ढोलकी को हार्दिक सांत्वना देने वे सर्वथा ग्रसमर्थ रहा। ढोलकी रो-रोकर निढाल होने लगी। वह झीटिया की वक्ष मे ग्रपना मुंह छिपाकर सिसकने लगी। कुछ देर दोनो मौन रहे। ग्रश्रुग्रों के बह जाने पर हृदय की समवेदना कुछ कम हुई।

झीटिया उसको सहलाता हुग्रा बोला, "घबराती क्यों है ? बात नही बिगड़ी तो मैं शाम तक ही ग्रा जाऊंगा, नही तो देखा जायेगा। लेकिन तू ग्रपने मन को कमजोर न कर। तेरा मन सहजोर होगा तो मैं जरूर ग्राऊंगा, जरूर ग्राऊंगा।"

ग्रौर उसने ढोलकी के दोनो हाथ मजबूती से पकड लिये।

क्षितिज होठों को चूमता हुग्रा सूरज निकल रहा था। पूरब मे प्रकाश धीरे-धीरे बढ रहा था कि काका ने ग्रपने ग्राने की सूचना द्वार खटखटाकर दी। ढोलकी द्वार खोलकर काका के सीने से लिपट गई। काका को बात समझने मे देर नही लगी। वह उसका सिर सहलाता हुग्रा कहने लगा, "तुझे जितना दुख है बेटी, उतना मुझे भी है पर झीटिया को रोक कर हम महापाप कर बैठेंगे। तू नही जानती की झीटिया का सर्वनाश करने वाले ये सामन्त लोग ही हैं, इसलिए इनके जुल्मों को मिटाने में झीटिया को ग्रपना सर्वस्व लगा देना चाहिये; यहां तक कि ग्रपने प्राण तक भी दे देने चाहिये।" ग्रपने स्वर को जरा धीमा किया, "ग्रौर फिर तू चिन्ता क्यों करती है ? तेरे

झोटिया का बाल भी बाँका नहीं होगा। वह मरेगा नहीं, उसे कोई नहीं मार सकता, वह अमर है।" चौधरी की आँखों में विश्वास बोल उठा।

झोटिया ने काका के पाँव पकड़ लिये। उसकी आँखों में अश्रु बह उठे—स्नेह, प्रेम और कर्तव्य के साक्षात प्रतीक।

× × ×

मास्टर ने उन्हें नई शक्ति, नई प्रेरणा और नये जोश के साथ विदा कर दिया।

"साथियो!"

तुम्हारे साथ राज्य की वह शक्ति नहीं है जो किराये पर खरीदी जाती है लेकिन जनता की अपराजेय शक्ति है जो विजय की दुन्दुभी बजा-बजाकर रहेगी। तुम लोगों के लिये संघर्ष की गोपनीयता अति आवश्यक है। इसलिये तुम ठाकुर के अत्याचारों को अपनी नजरों के सामने रखो। पलभर के लिये यह न भूलो कि ठाकुर ने अपने 150 व्यक्तियों द्वारा गाँव में एक क्रूरता का साम्राज्य स्थापित कर नया आतंक पैदा किया है"। स्त्री-बच्चों धर्म-सम्पत्ति सब पर अनाधिकार कायम किया है। अमानुषिक अत्याचार का जिन्दा बाजार लगा दिया है। स्त्रियों की इज्जत पर अपने अपराधों के दाग लगा दिये हैं। तब तुम्हारा जोश ठन्डा नहीं होगा। अत्याचार की याद ही संघर्ष की आग है, विद्रोह की शाश्वतता है। जो अत्याचार व अन्याय को याद रखता है, उसका जोश ठंडा नहीं होता।"

तब शिष्टमण्डल का कारवाँ पैदल ही चल पड़ा।

दुपहरी की तपती धूप में वे सब बाँगढ़ ग्राम की सीमा पर पहुँचे। मार्ग में जो भी किसान मिला उसने रोते-रोते ठाकुर के अत्याचारों की कथा कही। औरतों ने ठाकुर के व्यक्तियों द्वारा किये गये नंगे जुल्मों के दाग छातियों पर दिखाये। झोटिया का हृदय भर

उठा। उसने एक औरत के पाँव पकड़कर कहा, "माँ ! यदि हममें सच्चे गरीब का खून है, तो हम इस अत्याचार को समाप्त करके ही रहेंगे।'

रंगा ने भर्राये स्वर में उस औरत को आश्वासन दिया, "यह दाग तेरे सीने का नहीं है, यह दाग भारत माँ का है और भारत माँ का सपूत अब जाग रहा है, वह जुल्म का प्रतिशोध लेकर ही रहेगा। माँ तू धीरज धर।"

एक अबोध बालक ने रोते हुए अपना दायाँ पाँव दिखलाया जो किसी नृशंस ठाकुर-चाकर के नालदार जूतों से कुचला गया था, "देखो! देखो, मेरे पग को देखो माँ ! माँ, बड़ी पीर हो रही है, बहुत जल रहा""माँ""माँ।"

भीटिया ने उसे अपनी छाती से चिपका लिया। उसके मासूम चहरे पर शत-शत चुम्बनों की वर्षा कर दी, "मत रो मेरे बच्चे, मत रो। तेरा यह भाई तेरे उस पाँव का बदला लेगा, ठाकुर का पाँव नहीं, सिर कुचल देगा।" यह सुनकर बच्चे के मुख पर आँसूओं-भरी मुस्कान नाच उठी।

दर्द का कारवाँ कदम-कदम पर मिलता गया।

गाँव की सीमा आ चुकी थी।

केदार ने एकाएक सबको रोकते हुए कहा, "ठहरो। हम गाँव में जाकर क्या करेंगे ? गाँव वालों के मुख से दुख-दर्द सुनकर यह तो पता चल ही गया कि ठाकुर ने अत्याचार किया है।"

भीटिया चुप नहीं रह सका, "हमें ठाकुर से मिलना चाहिये।"

केदार ने टोकते हुए विनीत स्वर में निवेदन किया, "जिस कार्य की तहकीकात करने के लिये हमें भेजा गया है, वह तो पूरा हो ही गया।"

तभी धूल के बादल उठते हुये उनकी ओर आये। वे टकटकी लगाकर उनकी ओर देखने लगे। घोड़ो और ऊँटो पर लगभग बीस

व्यक्ति उनके सामने आ धमके। उनके हाथों मे बन्दूकें, भाले और तलवारें थी। उन्होंने आते ही सेनानियों को भालो से घेर लिया, "चलो, ठाकुर साहब के डेरे पर।"

भीटिया क्रोध से भड़क उठा, "नही चलेंगे।"

एक सवार जोर का अट्टहास कर उठा, "नही चलोगे? गादड़े की मौत आती है तब गाँव की ओर भागता है। देखा है, यह भाला, एक ही चोट मे कलेजा चीरकर रख देगा।"

केदार ने भीटिया को शात किया।

सभी सेनानी डेरे लाये गये।

ठाकुर का डेरा बहुत ही बड़ा था। उसके चारों ओर छोटी-छोटी झोपड़ियाँ थी जिनमे उनके दास और दासियां रहती थी। डेरे का रग लाल था और उसकी बनावट मे प्राचीन और अर्वाचीन कला का सुन्दर अपरिपक्व सामजस्य था।

ठाकुर को इनके आने की सूचना प्राप्त होते ही बाहर आया। उसके खूखार चेहरे पर बड़ी-बड़ी मूँछें साँप के फन जैसी लग रही थीं। उसके हर कदम की आवाज के साथ उसके अन्तर की पैशाविकता प्रकट हो रही थी।

आते ही मुह बिचलाकर बोला, "ले आये, इन बकरो को, सबकी खाल उधेड दो।"

सबको नगा कर दिया गया। भीटिया ने हाथ-पाँव चलाने की कोशिश की तो उसके सिर पर दो जूते मारे गए।

"चींटी होकर फड़फड़ाता है हरामजादा! घासिया लगा दो मुक्के को इसके गाल पर।"

एक मुक्का भीटिया के गाल पर लगा। खून का फुव्वारा छूटा जो उसके होठों पर फैलकर नंगी छाती पर बिखर गया।

केदार की ओर ठाकुर लपका, "तो तू गाँव वालों का हिमायती बन कर आया है।"

'हां।'

तभी ठाकुर का एक आदमी आगे बढ़ा। सलाह के स्वर में मेनारियों से बोला, "भला चाहते हो तो ठाकुर सा के पाँव पकड़कर माफी माँग लो और कान पकड़कर कह दो कि अब हम आपको सदा माई-बाप मानेंगे।"

"नहीं! थू है इस पर।" रूपाराम भड़का। आगे सीना तानकर खड़ा हो गया।

"मार-मार, साले के जूतों की मार।" ठाकुर लाल-पीला हो गया। उसने भी कूदकर रूपाराम के पेट पर एक जोर की लात जमा दी। वह मर्द मूर्छित हो गया।

अब रंगा की सहन-शक्ति आवे (दायरे) से बाहर हो गई, "ठाकुर! यह अत्याचार कितने दिन का है? सौ दिन सुनार के बाद एक दिन लुहार का भी आयेगा तब"? "तब तेरी मूँछों के एक-एक बाल को नोड़ देंगे। तू बिलबिलायेगा और यह सारा गाँव तेरा तमाशा देखेगा।"

"अरे! वह दिन आयेगा तब आयेगा। रामिया, सोंधिया, हाथूड़ा, सब-के-सब कहाँ मर गये, ले आओ कोड़े और इन सबकी खाल उधेड़कर रख दो।"

तभी ठाकुर सा का बेटा आ गया। बाप को रोककर वह अधिकार पूर्ण स्वर में बोला, "तुम लोगों ने यह गड़बड़ी क्यों मचा रखी है?"

"यह गड़बड़ी नहीं, आन्दोलन है।" केदार ने उत्तर दिया। उसके उत्तर में सबका स्वर मिल गया, "अत्याचार के खिलाफ सच्चाई का आन्दोलन है। यह कभी भी बन्द नहीं होगा।"

"नहीं।" एक झटका दिया बड़े राक्षस के बेटे-छोटे राक्षस ने, "यह प्रजा-परिषद् की गुण्डागर्दी है। प्रजा-परिषद राज्य के तख्त को उलटना चाहती है।"

"नहीं, प्रजा परिषद जनता के अधिकारों व हितों के लिये उचित संघर्ष करने वाली संस्था है।"

"तो तुम लोग जवाहरलाल नेहरू और जयनारायण व्यास से क्यों सम्बन्ध रखते हो ?"

"आप अपने राजा से क्यों सम्बन्ध रखते हैं और आपका राजा बर्तानियाँ हकूमत के तलवे क्यों सहलाता है ?"

"तुम लोग यहाँ क्यों आये हो ?" वह उत्तर सुने बिना प्रश्न पर प्रश्न करता जा रहा था।

"गाँव वालों के अत्याचारों की जाँच करने।"

"तुम कौन हो जाँच करने वाले ?"

"प्रजा-परिषद विपदा-ग्रस्त लोगों की सहायता करना अपना मानवीय कर्त्तव्य समझती है।"

"इस कर्त्तव्य-वर्त्तव्य के फेर में जान गवाँ बैठोगे : खैर इसी में समझो कि ठाकुर सा के पाँव.....।"

"हम पाँव क्या, क्षमा भी नहीं मागेंगे।"

बड़े राक्षस ने छोटे राक्षस को धक्का देकर दूर ठेल दिया, "ये लातों के देव बातों से नहीं मानेंगे। इष्टदेव की तो भ्रष्ट पूजा ही होनी चाहिये। मारो कोड़ों और डंडों से।"

राक्षस की आज्ञा पाते ही लगभग बीस आदमी उन पर टूट पड़े। लातों, घूँसों, डंडों और कोड़ों से पीटते-पीटते उन्हें अचेत कर दिया। वे जलती हुई रेत पर गिर गये।

ऊपर सूरज तवे की तरह तप रहा था और नीचे भूमि आग की तरह दहक रही थी लेकिन उन्होंने क्षमा नहीं माँगी। युगों से चली आई शहीदों की आन को उन्होंने जुल्म के धधकते कुंभीपाक में भी बनाये रखा। मर जायेंगे पर शान नहीं छोड़ेंगे।

ठाकुर ने अपने ललाट के पसीने को पोंछते हुए कहा, "इमें गर्मी

सता रही है, हम चलते हैं, शर्बत पीने के लिए और इन हरामजादों को कराहने तक का मौका न दिया जाय।"

ठाकुर ने फिर मूंछों पर ताव दिया। उनकी मूंछो में आज बल नही पड़े। ठाकुर की आत्मा को जोर का धक्का लगा, "मेरी मूंछों में बल क्यों नही आये, हाथूड़ा! एक को नगा करके सारे गाँव में जूतियों से पीटते हुये घुमाओ ताकि गाँव वाले जान जायें कि ठाकुर कितना बलशाली है? गाँव वालों की आवाज का कोई मूल्य नही, स्वयं राजा भी मेरा भाई-बन्धु है।" उसने अट्टहास किया और वह यह गुनगुनाता—मोरे सैंया भये कोतवाल, अब डर काहे का?—डेरे के भीतर चला गया।

चार व्यक्तियों ने रूपाराम को घसीटते-घसीटते सारे गाँव में घुमाया। वह केवल लंगोट पहने हुए था। उसके बदन पर कोड़ों के हृदय विदारक निशान थे। उस पर धड़ाधड़ पड़ते हुये और कोड़े ग्रामीणों मे कपकपी उत्पन्न कर रहे थे। किसी-किसी कमजोर हृदय की औरत ने पीटते हुये रूपाराम की दुर्दशा देखकर अपने मुंह को घूंघट में छुपा लिया और भगवान् से प्रार्थना की कि इस ठाकुर को काला डस जाय, इनको मरते समय पानी देने वाला भी न मिले। हमारी हाय से इसका सत्यानाश हो जाय। ओह! इन सामन्त-क्षत्रियों का क्या सच्चा धर्म यही है?

रूपाराम को सारे गाँव मे घूमाकर घटनास्थल में अचेत की अवस्था में जमीन पर फेंक दिया गया। तब तक शेष सेनानियों को जरा होश आने लग गया। उन्होने जैसे ही हरकत की तभी ठाकुर के दरिन्दे आदमियों के चेहरो पर क्रूर मुस्कान नाच उठी। वे उन्हें फिर पीटने के लिये उठे। ठाकुर के एक-दो व्यक्तियों ने तो उठक बैठक भी की।

इस बार उन सब ने सेनानियों को उल्टा सुला दिया। डेरे के भीतर से कैंची मंगवाकर उन नर-पिशाचों ने उन सबकी चोटियो को

काटा। यज्ञोपवीतों को तोड़ा। तब भी उन्हें आनन्द नहीं आया तो उनके गुप्तांगों में नुकीले डंडे घुसाये गये। सेनानी एक मार्मिक वेदना से कराह उठे। कुट्टिक ने इस काम को पूरा करने के लिये सुइयों से काम लिया। गुप्तांगों में जैसे-जैसे सुइयाँ चुभती थीं वैसे-वैसे सेनानी जलन के मारे हाय-तोबा कर उठते थे।

डेरे की डावड़ियाँ डेरे की छत पर चढ़कर यह कुकृत्य देख रही थीं। वृद्धिक की आँखों में अश्रु भर आये थे। वे मन-ही-मन मानो भगवान् से प्रार्थना कर रही थीं कि हे प्रभु! इन निर्दोष वीर सेनानियों को साहस दे ताकि यह इतने सबल बन जाय कि अत्याचार की हर चोट इन्हें फूल मालूम दे जिससे ये हम सबका उद्धार कर सकें।

साँझ पड़ने पर ठाकुर साहब आये। सेनानियों के गुप्तांगों में सुईयाँ चुभाते-चुभाते ठाकुर के आदमी थक चुके थे। उनकी अंगुलियाँ इन्सानी खून से लाल हो उठी थीं।

ठाकुर ने कहा, "सबको चित्त लेटा दो।"

चित्त होने के बाद ठाकुर ने देखा तो उसका खून जलकर राख हो गया। सेनानियों के होठों पर अमिट-अमर मुस्कान नाच रही थी। ऐसा मालूम होता था जैसे दासियों की आर्तनाद-भरी मौन और गाँव वालों की सच्ची विनय को प्रभु ने सुनली और इन्हें सहने की अपरिमित शक्ति दे दी है।

"इनसे अब भी माफी माँग लो।" ठाकुर ने अपने दोनों हाथों को हिलाकर कहा।

सब ने अस्पष्ट स्वर में कहा, "नहीं।"

"नहीं।"

"मारो, तब तक मारते रहो जब तक इनकी आँखें झुक न जायें और हाँ, इस बात का ध्यान रहे, इनमें मरने एक भी न पाये।"

कारिन्दों ने फिर पीटना शुरू किया और सेनानी मूर्छित हो गये।

× × ×

सांझ का भयानक अन्धकार गाँव पर छाने लगा था। सारे गाँव में आतंक छा गया। गाँव की औरतों ने सूरज छिपते-छिपते अपने बच्चों को अपने-अपने आँचलों में छुपा लिया। विद्रोही किसानों ने सेनानियों की सहानुभूति में दूध के कटोरे नहीं भरे। उन्होंने दीपक तक नहीं जलायें। खाना तक नहीं खाया। एक आग उनके हृदय में जल रही थी। वह आग अब किसी विशिष्ट की प्रतीक्षा में थी।

उसी शून्यता को चीरते हुये दो ऊँट ठाकुर के डेरे की ओर आ रहे थे।

एक ऊँट पर शहर की प्रसिद्ध वेश्या थी और दूसरे पर दो मिरासी थे जिनके पास गाने का साजो-सामान था। उन दोनों ने उतरकर अदब के साथ ठाकुर की जय जयकार की, "खम्मा अन्नदाता ने।"

अन्नदाता ने हल्का-हल्का कुसुम्बा ले रखा था। उसके कदम डगमगाये। वेश्या ने ठाकुर का मुजरा किया। उन्हें ठाकुर के खास बैठकखाने में ले जाया गया। ठाकुर के इस बैठकखाने मे बड़ी-बड़ी मशालें जल रही थीं। उन मशालों में सामन्तवाद की जर्जरित होती संस्कृति और सभ्यता की विकृति कला का बाना पहन कर दीवारों पर लगी हुई थी।

फर्श पर आलीशान गद्दा था और उसके नीचे जेल के अपराधियों द्वारा बनाया हुआ कालीन।

मिरासियों ने तबले पर थाप लगाई। धन् की आवाज डेरे की दीवारों से टकरा उठी और उस तबले की आवाज से सेनानियों की कराह का संघर्ष हो गया। कराह ने तबले की आवाज पर विजय पाई।

आज ठाकुर ने विशेष रूप से अपने दरोगे लालिये द्वारा कुसुम्बो तैयार करवाया था। उसकी एक चुस्की लेते हुये ठाकुर ने झूमकर कहा, "आने दे, कलेजे का टुकड़ा कर देने वाली तान।"

वेश्या खड़ी हो गई। उसने अपने हाथ ठाकुर के हाथ में दे दिये। ठाकुर ने एक बार कुसुम्बे की चुस्की ली।

"अब क्यों मोड़ा कर रही है ?"

"आप मेरे घुंघरू तो बाँध दीजिये ?"

"हम !" ठाकुर जैसे चौंक पड़ा ।

"आज मैं आपसे ही बँधवाऊँगी ।" वेश्या ने अपना पाँव ठाकुर की ओर बढ़ा दिया । उसने अपने हाथ में घुंघरू उठाकर एक पल के लिये देखा और फिर वह मन्त्रवत बाँधने लगा । वेश्या अपनी इस विजय पर दम्भ से मुस्करा रही थी । दोनों मिरासी उसकी इस चालाकी पर आँख के इशारे के साथ उसे वाह-वाह दे रहे थे ।

वेश्या ने नाचकर पूरा चक्कर काटा और गीत आरम्भ किया :

*"अमल तू उणमादियो सैणा हन्द सैण
था बिन घड़ी अन आवड़ै, फीका लागे नैण
भरला ए सुघड़ सजनी, दारुड़ो दाँखा रो......
पीवणवालो लाखों रो......
भरला......
दारू पियो रंग करो, राता राखो नैण
वैरी थारां जल मरं, सुख पावेला सैण
भरला ए सुघड़ सजनी, दारुड़ो दाँखां रो
पीवणवालो लाखों रो......
दारू तो भक-भक करै, सीसी करै पुकार
हाथ प्यालो धण खड़ी, पीओनी सरदार
भरला......
दारू दिल्ली आगरो, दारू बीकानेर
दारू पियो साहिबो, कोई सौ रुपयों रो फेर......
भरला......

*शराब सम्बन्धी एक लोक-गीत ।

सौ रुपये के फेर ने ठाकुर को फेर दिला ही दिया । उसके हाथ से उसने सौ का नोट छीन लिया । नोट को उसने अपने साथ आये मिरासियों को दे दिया ।

नृत्य चल रहा था ।

लालिया अब भी अफीम घोल-घोल कर कुसुम्बो बना रहा था । जब नशा हद से अधिक बढ़ने लगा था तब लालिये ने सहमते-सहमते प्रार्थना की "माई-बाप ! आज तो"""।"

"तेरे बाप जी क्या लगता है गोला, दे कुसुम्बो आज हम कुसुम्बो में डूब जाना चाहते हैं । सब को बाहर निकाल दो ।" वह पीता ही गया ।

सब बाहर चले गये ।

जनता की लड़ाई के बहादुरों को धीरे-धीरे पुनः होश आने लग गया था । उनकी पिटाई फिर से की गई ।

वेश्या की गोद में ठाकुर हिचकियों के साथ गिरा, तू"""तू"""। इन प्रजा परिषद वालों को आग में"""। ओह ! मेरा गला"""गला""" गला""" ।"

ठाकुर का स्वर टूट गया। वेश्या ने चिल्लाकर द्वार खोला, "ठाकुर साहब को क्या हो गया, क्या हो गया?"

डेरे की दीवारों के लाल पत्थर चिंघाड़ उठे, "ठाकुर मर गया, ठाकुर मर गया । कुसुम्बे के जहर ने उनके प्राण हर लिए ।"

डेरे में कुहराम मच गया, "ठाकुर सा मर गये ।" सेनानी मुस्करा उठे और विद्रोही किन्तु विवश गाँव वालों ने दूध के कटोरे भर-भर पिये ।

: २१ :

चौधरी काका अपने आँसुओं को अंगोछे से पोंछते हुये आर्द्र स्वर में बोले, "अब तेरा भौटिया कभी नहीं आयेगा। बेटा, कभी नही आयेगा।" दुख से उसका कलेजा फटा जा रहा था।

ढोलकी को महसूस हुआ कि उसका भी कलेजा मुँह को आ रहा है। उसकी नस-नस पीड़ा से फट रही है।

"ऐसे अशुभ बोल मत निकाल काका, वह जरूर आयेगा, वह जरूर आयेगा।"

उसी समय मास्टर ने घर में प्रवेश किया। उसके चेहरे पर उदासी थी। उसके उठते कदम उदास थे। ढोलकी को चुप कराता हुआ कहने लगा "बेटा! वह आयेगा। आज अन्याय का सहारा लेकर यह सामन्तवाद का गढ़ बर्तानिया हुकूमत को पुष्ट करने के लिये जनता के जागरण को, स्वतन्त्रता संग्राम को किसी झूठ की आड लेकर दबा सकता है। लेकिन क्या तू समझती है कि ज्वालामुखी सदैव धरती के गर्भ में भड़कता रहेगा? क्या वह कभी फूटकर बाहर नहीं आयेगा? वह आयेगा, वह जरूर आयेगा तब यह वेश्या भी झूठ नही बोलेगी। यह कानून के कटघरे मे खडी होकर कहेगी, यह देश के सेनानी निर्दोष हैं। मैंने इसलिए झूठ बोला क्योंकि मुझे सत्ता के अधिकारियों ने धमकी दी थी कि यदि तू ने यह नहीं कहा कि इन लोगों ने ठाकुर को मारा है तो तुम्हें गोली से उड़ा दिया जायेगा।" तब [illegible] ल का डाक्टर लाश के पोस्टमार्टम के बारे में [illegible] ला नही घोटेगा। तब तेरा [illegible], काका [illegible] जायेंगे। तब

झींटिया का बाप और उसकी माँ अपने बेटे पर आकाश से फूलों की वर्षा करेंगे क्योंकि तब तक उसके झींटिया ने तमाम झींटियों के कार्यकर्ताओं को सामन्तों के खूनी शासन से मुक्त करा दिया होगा····

और तू रोती है ?"

लेकिन ढोलकी का रोष अन्याय के विरोध में चुप नहीं रह सका, "तुम सबका नाश हो । मेरे झींटिया को सताने वालों ! तुम पर बिजलियाँ गिरें ।"

वह रो उठी । आज उसके मुख की सजलता और कोमलता एक [illegible] में बदल गई । उसका सौन्दर्य जो शीतलता प्रदान करता था, आग बरसा रहा था । वह रोते-रोते थक गई ।

"तू झींटिया को बहुत चाहती है न, हृदय से प्रेम करती है न, [illegible] अपने हृदय के अन्तरिक्ष के भावरूपी तारों की आँखों से अपने [illegible] देख, तेरा झींटिया तेरी आँखों में मिल जायेगा, वह कहता [illegible] कि मैं तुझ में हूँ । विधाता ने तुझे प्रेम दिया है, जीवन में [illegible] देने के लिये ताकि दुःख और सन्ताप में तेरी यह आशा कि झींटिया एक दिन जरूर आयेगा, बनी रहे ।" मास्टर की आँखों [illegible] चमक रहा था ।

"तो क्या वह आयेगा ?" हठात् ढोलकी ने पूछा । उसके आँसू [illegible] । मैं एक पतिव्रता की तरह उसकी [illegible] रखूँगी ।"

"अपने झींटिया से पूछ, मैं क्यों बताऊँ ?"—अब्बा काका ! [illegible] झींटिया से मिलने का समय मिल गया है, दोपहर को [illegible] [illegible] और कल से हमें नये आन्दोलन का भी श्रीगणेश [illegible] सत्य के लिये [illegible] भी चुपचाप नहीं सहेंगे । [illegible] पर अधिकार लेकर छोड़ेंगे ।"

कहते-कहते मास्टर चला गया। काका बिस्तरे पर आँखें मूँदकर अपने गाँव के मिटते महलों के खँडहरों को देखने लगा।

और ढोलकी द्वार पर बैठी-बैठी रुआँसी से स्वर में गा उठी। उसके स्वर में एक दर्द था, पत्थर को पिघला देने वाला दर्द :

"होजी मारु रे मसल्यो, मसल्यो तेल चम्पेल,

रे पाटी हे तो पाडी हे म्हांरी 'मूमल' राणी जोए, मेण सूँए।

प्रतीक्षा मे आकुल मूमल महेन्द्र की सज-धज का इन्तजार कर रही है। तारों भरी रात है। फूलों से शय्या सजी हुई है। वह दूर एक टक निगाहें जमाती हुई कह रही है कि ये मेरे महलों मे रहने वाले! अब तो आजा, मैं अकेली तुझ बिन सेज पर डर रही हूँ।

पर महेन्द्र अपनी प्रेमिका-पत्नी को बिलखती छोड़कर चला गया। नहीं आया, जीवन भर नहीं आया।

ढोलकी ने अपना गीत बन्द कर दिया। एक नई आशा उसके अंग-अंग मे जाग उठी, "पर मेरा झीटिया अवश्य आयेगा। क्योंकि वह अपनी ढोलकी को सन्देह से नहीं देखता है। जुग-के-जुग बीत जायेंगे, उसकी ढोलकी उसकी प्रतीक मे बुड्ढी हो जायगी तो भी झीटिया उसे छाती से लगाकर कहेगा, 'तू मेरी ढोलकी है न, देख, मैं आ गया हूँ। मैं तुझे कभी भी एक क्षण के लिए नहीं भूला, मैं तुझे ही प्रेम करता हूँ, केवल तुझसे ही ढोलकी।"

तब गाँव के छोटे-छोटे बच्चे नाच-नाच कर कहेंगे, किसका झीटिया किसका टम, चाल म्हांरी ढोलकी "ढमाकढम" "ढमाकढम" "ढमाकढम।

ढोलकी के आँसू उसके मुस्कराते अधरो पर आकर रुक गये।

× × ×

झीटिया ने जेल के सींकचों से अपने हाथ निकालकर ढोलकी का अन्तिम बार स्पर्श किया, "तू निशक रह, मैं जरूर आऊँगा।

हम गुलाम हैं, कल हम निश्चित रूप से आजाद होंगे तब तेरा
ोटिया आजाद होकर आयेगा । तू मेरी अडीक करना ।"
आँखें छलछला आई ।

मैं तेरी जीवन भर अडीक रखूंगी, तू नही आवेगा तो कुंवारी
ाण दे दूंगी, पर तुझे नही भूलूंगी, तू मेरा झीटिया है न ?"

"मै जरूर आऊँगा ।" उसका दृढ संकल्प बोला, "यह मास्टर
हाथ में स्वतंत्रता का झंडा लिए खडा है, कभी यह स्वतंत्रता
ही छोड़ेगा; उस समय मिट्टी का कलक मिट जायेगा और तब
रूर आऊंगा"' स्वतंत्रता का प्रहरी बनकर, स्वतंत्र देश का स्वतंत्र
मी होकर""चिंता न कर ढोलकी, हँस" हँस" हँस"न ।"

लेकिन ढोलकी ने रोते-रोते झीटिया के चरण स्पर्श कर लिये ।
का ।" झीटिया ने रोते-रोते कहा । ये ममता के आँसू थे जिन्हे
टेया अब नही रोक सका । बह ही गए, "सभी को मेरा प्रणाम
ना; बड़े-बुढ्ढो, बच्चो और हरखा को भी।"""" अच्छा प्रणाम,
ाम मास्टरजी, प्रणाम । मेरे देश तुम्हें भी प्रणाम""धरती तुम्हे
"।" सब बाहर चले आये और जेल के द्वार बन्द हो गये ।

बाहर कोई गा रहा था :—

जागो, जागो हे महाकाल""""

॥ समाप्त ॥